
इकाई 10 मैला आंचल भाषा और शिल्प

इकाई की रूपरेखा

- 10.0 उद्देश्य
- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 मैला आंचल : संरचना शिल्प
 - 10.2.1 चरित्रांकन
- 10.3 मैला आंचल : भाषा शिल्प
 - 10.3.1 जन व्यवहार की भाषा
- 10.4 सारांश
- 10.5 प्रश्न
 - उपयोगी पुस्तकें

10.0 उद्देश्य

‘मैला आंचल’ की तीसरी और पाठ्यक्रम की दसवीं इकाई आपके सामने है। इससे पहले इकाई आठ और इकाई नौ में आपने क्रमशः ‘मैला आंचल’ का आंचलिक उपन्यास के रूप में और उपन्यास में उपस्थित सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सरोकारों का अध्ययन किया। रेणु ने बिहार का पुर्णिया जिला जो बहुत पिछड़े क्षेत्र में आता है यहाँ के बहुजनों की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को बहुत गहराई से समझकर, उसके विविध पक्षों को इस उपन्यास के माध्यम से उजागर किया है। स्वतंत्रता से पूर्व की स्थिति में स्वतंत्रता के बाद नाममात्र भी बदलाव न आने की स्थिति में जनसामान्य औपनिवेशिक शासन तंत्र से मिलती-जुलती शासन व्यवस्था से ही संघर्ष करता रहा है। मेरीगंज के जमीनों के मालिकों का राजनीतिक व्यवस्था में सीधी दखल देना शासन-तंत्र और राजनीति द्वारा इसी पूँजीवादी वर्ग की बेहतरी और सुरक्षा के लिए कार्यरत रहना। स्वाधीनता के बाद भी दलित-आदिवासियों को गुलामी की जंजीरों से मुक्तता नहीं मिली और आज भी बंधुआ मजदूरों के रूप में उन्हें जमींदारों द्वारा उत्पीड़ित किया जाता है, इन सभी प्रश्नों को और सामाजिक, आर्थिक वास्तविकताओं को रेणु ‘मैला आंचल’ में आभिव्यक्त किया है। इस इकाई में आप:

- ‘मैला आंचल’ संरचना शिल्प की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे,
- ‘मैला आंचल’ में रेणु ने चरित्रांकन के लिए किन प्रविधियों का प्रयोग किया है, इसे समझ सकेंगे,
- ‘मैला आंचल’ के प्रमुख नारी पात्रों की स्वभाव विशेषताओं को आप जान सकेंगे,
- रेणु ने आंचल विशेष की भाषा, लोकगीत, लोकसंगीत, मुहावरे-कहावतों को जिस प्रामाणिकता के साथ ‘मैला आंचल’ में सहजता से लाकर आंचल विशेष को हमारे सामने साकार किया है, इसे आप स्वयं ही महसूस कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

इकाई सात और आठ में आपने फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास ‘मैला आंचल’ को आंचलिकता, राजनीतिक व सामाजिक संदर्भों में जाना समझा अर्थात् ‘मैला आंचल’ की विषयवस्तु के विभिन्न कोण आपने देखे। इस इकाई में आपको देखना है कि रेणु ने विषयवस्तु को रचना का रूप किस प्रकार दिया है। रचना की संरचना का उसके रूप को संरचना शिल्प और भाषा शिल्प के माध्यम से पहचानने का प्रयास किया जाएगा। वैसे भाषा शिल्प को व्यापक रूप में संरचना शिल्प के अंतर्गत रखा जा सकता है, लेकिन चूंकि ‘मैला आंचल’ एक आंचलिक उपन्यास भी है और उपन्यास में आंचलिकता उघाड़ने में उपन्यास में चित्रित

अंचल का भाषागत योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है, अतः 'मैला आंचल' के भाषा शिल्प का अलग से अध्ययन विश्लेषण आपके लिए अत्यंत उपयोगी है।

संरचना शिल्प के अंतर्गत रचना का अध्ययन कई स्तरों पर किया जा सकता है। पारंपरिक रूप से कथावस्तु, पात्र रचना, परिवेश चित्रण, भाषा शैली और विश्व दृष्टि के स्तर पर भी यह विश्लेषण संभव है। ई.एम. फार्स्टर के उपन्यास के पक्ष-अध्ययन के अंतर्गत कथावस्तु, चरित्रांकन व देशकाल वातावरण अथवा परिवेश का अध्ययन भी किया जा सकता है। परिवेश या देशकाल वातावरण का अध्ययन आंचलिकता, राजनीतिक व सामाजिक संदर्भों के अंतर्गत काफी विस्तार से हो चुका है। अतः यहाँ संरचना के अंतर्गत कथावस्तु व चरित्रांकन का विश्लेषण उचित होगा।

10.2 मैला आंचल : संरचना शिल्प

रेणु ने 'मैला आंचल' की संरचना में जिन तत्वों को माध्यम बनाया है, उनमें एक है कथा शिल्प या कथावस्तु। कथावस्तु के कुछ सामान्य गुण हैं - जिज्ञासा या कुतूहल, सरसता व रंजकता आदि। इनके साथ कथावस्तु का सुगठित होना भी उसका गुण है। 'मैला आंचल' में कथावस्तु के सामान्य गुण तो प्रचुर मात्रा में मिलते ही हैं, उसकी अपनी अलग विशेषताएं भी हैं। वास्तव में किसी रचना की विषयवस्तु ही उसके शिल्प या रूप का निर्धारण करती है, इसलिए 'मैला आंचल' की विशिष्ट वस्तु ने इसका विशिष्ट रूप भी निर्मित किया है। सामान्य तौर पर 'मैला आंचल' की कथावस्तु एक रेखीय ढंग से विकसित होती है। लेकिन बीच बीच में लेखक ने चरित्रों व घटनाओं की पृष्ठभूमि व उनके अतीत पर दृष्टि डालने के लिए फ्लैश बैक टेक्नीक का प्रयोग भी किया है।

'मैला आंचल' का प्रारंभ होता है - 1946 में बिहार के पूर्णिया जिला के मेरीगंज गांव में मलेटरी आने की अफवाह के साथ। वास्तव में उपन्यास का आरंभ अत्यंत नाटकीय ढंग से होता है इस खबर के बिजली की तरह फैलने की सूचना के साथ कि 'मलेटरी ने बहरा चेथरू को गिरफ्तार कर लिया है'। यह खबर न होकर अफवाह है या गांव में वर्दीधारी अजनबियों के प्रवेश से पैदा हुई भय की स्थिति जल्दी ही वास्तविकता का बोध होने से निराधार साबित होती है। गांव में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अधिकारी मलेरिया सेंटर खोलने के प्रस्ताव को प्रत्यक्ष रूप में लाने के लिए आए हैं। लेकिन रेणु ने कथावस्तु के सृजन में अपनी प्रतिभा का आभास उपन्यास के आरंभ में ही नाटकीयता के प्रभाव से जिज्ञासा या कुतूहल जगा देते हैं।

1946 में उपन्यास के घटनाक्रम को आरंभ करते समय रेणु 1942 के जन-आंदोलन के प्रभाव व पृष्ठभूमि को भी साथ ही चित्रित कर देते हैं। गांव की सामान्य रूपरेखा, उसका इतिहास और विकास तो वे आगे चलकर बताते हैं, लेकिन गांव की सामाजिक पृष्ठभूमि, उसका जातिगत विभाजन, उसका मानसिक पिछड़ापन वे पहले अध्याय में ही प्रस्तुत कर देते हैं। गांव संबंधी इतनी जिज्ञासा जगाने के बाद रेणु गांव की भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक व सामाजिक स्थितियां विशुद्ध विवरण के ढंग में बयान करते हैं। 'मैला आंचल' के कुछ प्रमुख चरित्र तो रेणु उपन्यास में आरंभ में ही प्रस्तुत कर देते हैं, बाकी चरित्रों को कथा के विकास के साथ-साथ उद्घाटित करते चलते हैं। उपन्यास की कथावस्तु में केवल कथा का अंश बहुत लंबा चौड़ा नहीं है, लेकिन रेणु की सृजनात्मकता इस बात में है कि बहुत बड़ी कथा न लेकर भी ऐसी कथावस्तु उन्होंने निर्मित की है कि हिंदी उपन्यास साहित्य में यह उपन्यास मील का पत्थर बनकर स्थित हो गया। उपन्यास की कथा मेरीगंज गांव में मलेरिया सेंटर खुलने की प्रक्रिया से आरंभ होती है। डॉ. प्रशांत कुमार के मलेरिया सेंटर का इंचार्ज बनकर आने से कथा को गति मिलती है। डॉक्टर प्रशांत कुमार गांव को चिकित्सा सुविधा भी प्रदान करते हैं और गांव के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन से भी गहरे रूप में जुड़ते हैं। तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद की बेटी कमली के रोग का उपचार करते दोनों प्रेम बंधन में बंधते हैं। उधर गांव में राजनीतिक गतिविधियां भी गति पकड़ती हैं। बालदेव कांग्रेस कार्यकर्ता व स्वतंत्रता सेनानी हैं, लेकिन गांव

में वह कोई सक्रिय राजनीतिक गतिविधि नहीं करता, जबकि कालीचरण आदि सोशलिस्ट पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता बनकर गांव में क्रांति का प्रचार करते हैं। साथ में ज़मींदारों का शोषण भी करते हैं तो गांव के सभी समुदायों का वर्ग चरित्र खुलकर सामने आ जाता है। कालीचरण जैसे सोशलिस्ट भी तब ज़मींदारों के पक्ष में जाते हैं। डॉक्टर प्रशांत कुमार को संथालों से सहानुभूति है, तभी वह 1947 के बाद के आज़ाद भारत में कम्युनिस्ट होने के आरोप में गिरफ्तार कर लिए जाते हैं। प्रशांत के कारावास के दौरान कमली उसके बच्चे की बिन ब्याही मां बनती है और प्रशांत जेल से रिहा होने पर उसे अपनाता है। प्रशांत कमली प्रेमकथा उपन्यास में एक स्तर पर चलती है तो दूसरे पर कई अन्य कथाएं भी सामानांतर ही उपन्यास में चलती रहती हैं। गांव का मठ अपने आप में कई कथाएं समेटे हैं और इन कथाओं को मुख्य कथा के साथ बालदेव का मठ में लछमी के साथ रहना जोड़ता है। बाद में बालदेव व लछमी डेरा छोड़ भी देते हैं। प्रेम प्रसंगों में कालीचरण मंगला, महंत रामदास-रामपियारी व अन्य कई प्रसंग भी कथा में गुंथे चलते हैं। लेकिन क्योंकि उपन्यासकार का मुख्य लक्ष्य पूरे अंचल के जनजीवन को उसकी पूरी विविधता व सजीवता में चित्रित करना है, इसलिए उसने गांव के जीवन के प्रायः सभी पक्षों को किसी न किसी प्रसंग द्वारा अपनी कथा में बुना है, चाहे वह होली का त्यौहार हो या कोई अन्य पर्व। उपन्यास में 1946-48 के मध्य की स्थिति को देश के संक्रमणकालीन दौर के रूप में चित्रित किया गया है, इसलिए इस संक्रमणकाल में कांग्रेस, सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट व राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ आदि की गतिविधियाँ औपन्यासिक संरचना में ढलकर चित्रित की गई हैं।

उपन्यास की कथावस्तु को रेणु ने आरंभ, विकास, मध्य, चरमसीमा व अंत के औपचारिक पडावों में तो नहीं बांटा, लेकिन उपन्यास का आरंभ अत्यंत नाटकीय व प्रभावशाली है इसी प्रकार उपन्यास का विकास भी सहज गति से होता है। उपन्यास की चरमसीमा है - महात्मा गांधी के प्रिय शिष्य बावनदास का गांधी की शहादत के दिनों बिना किसी के जाने, बिना किसी प्रचार के देश के लिए शहीद हो जाना, यह घटना उपन्यास के दूसरे खंड में उस समय घटती है, जब भारत-पाक समी पर स्मगलिंग का धंधा रोकने के लिए बावनदास निष्क्रिय प्रतिरोध का निर्णय लेता है। देश के स्वातंत्र्योत्तर परिस्थितियों से यह सच्चा गांधीवादी अत्यंत विचलित है और उसे स्वतंत्रता संग्राम में अपना योगदान निरर्थक लगने लगता है। इसलिए वह कलीमुद्दीपुर सीमा की ओर जाता है। उसे देखकर पुलिस के सिपाही या कांग्रेस स्मगलर दुलार चंद कापरा आदि परेशान तो होते हैं, लेकिन उसके बीच रास्ते पर खड़ा होने पर उनके मन में इस 'डेढ़ हाथ' के अत्यंत सन्माननीय देशभक्त को जीवित ही कुचल देने में कोई दुविधा नहीं होती। रेणु ने इस घटना को इतने यथार्थ रूप से चित्रित किया है कि आज़ादी के बाद का भारत का सामाजिक परिदृश्य अपनी पूरी क्रूरता व भयावहता में उघड़ जाता है। महात्मा गांधी के नेतृत्व में प्राप्त आज़ादी का यह हथ्र होता है, जिसे न खुद गांधी ही झेल पाए और न ही बावनदास जैसे उनके सच्चे शिष्य।

उपन्यास का अंत यदि चरम सीमा पर हो जाता तो यह कथावस्तु की अत्यंत प्रभावी सफलता होती, लेकिन उपन्यास जिस आदर्शवादी ध्वनि पर समाप्त हुआ है, उससे उपन्यास की चरमसीमा का प्रभाव कुछ खंडित हुआ है।

'मैला आंचल' को आंचलिक उपन्यास ही माना जाता है, लेकिन कथावस्तु के आधार पर इसे सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक आदि किसी भी प्रकार की रचना कहा जा सकता है। वैसे उपर्युक्त सभी प्रश्नों के सारतत्त्व इस उपन्यास की कथावस्तु में समाहित है। कथावस्तु को यदि कथा, चरित्र व परिवेश प्रधानता की दृष्टि से देखना हो तो निश्चय ही उपन्यास की कथावस्तु परिवेश प्रधान है। इसकी कथा व चरित्र दोनों ही परिवेश के जीवंत चित्रण के साधन मात्र हैं। अपने परिवेश चित्रण की प्रधानता के कारण ही 'मैला आंचल' उपन्यास को आंचलिक उपन्यास की श्रेणी में रखा गया है। कुल मिलाकर रेणु ने 'मैला आंचल' में अपने प्रिय अंचल को जीवंत रूप से उघाड़ने के लिए प्रभावी कथावस्तु का निर्माण किया है, जिसमें इतनी सरसता व रंजकता है कि पाठक उपन्यास में डूबा रहता है। उपन्यास

की कथावस्तु गठन की दृष्टि से कुछ विश्रुंखल जान पड़ती है, किंतु वास्तव में यह विश्रुंखल है नहीं। इसके गठन का ढीला ढाला ढांचा ही इसकी कथावस्तु का प्राण है।

अब देखना यह है कि इस कथावस्तु के निर्माण में रेणु की चरित्रांकन की क्या भूमिका है।

10.2.1 चरित्रांकन

रेणु ने 'मैला आंचल' में जिस प्रकार निरायास ढंग से कथावस्तु को निर्मित किया है, वैसे ही आयासहीन ढंग से उनके चरित्र भी अपना रूप ग्रहण करते गए हैं।

चरित्रों के दो प्रकार फास्टर ने बताए हैं - गोल और चपटे। गोल यानि उपन्यास की कथा के विकास के साथ-साथ विकसित होने वाले चरित्र। चपटे यानि कि कथा के आरंभ में प्रस्तुत विशेषताओं को कथा के अंत तक बिना परिवर्तन के बनाए रखने वाले चरित्र, इस दृष्टि से 'मैला आंचल' के अधिकांश चरित्र गोल हैं, लेकिन कुछ चरित्र चपटे भी हैं।

चरित्रों को एक अन्य स्तर पर भी परिभाषित किया जाता है - प्रतिनिधिक (टाईप) चरित्र या व्यक्तिपरक चरित्र। इस दृष्टि से भी 'मैला आंचल' के अधिकांश चरित्र प्रतिनिधिक या टाईप चरित्र हैं, जबकि कुछ चरित्र व्यक्तिपरक हैं, यहाँ यह स्पष्ट करना होगा कि प्रतिनिधिक या टाईप चरित्र किसी सामाजिक समूह, समुदाय या वर्ग के प्रतिनिधि चरित्र हैं, जबकि व्यक्तिपरक चरित्र अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण जाने जाते हैं। यद्यपि प्रतिनिधिक चरित्रों में भी व्यक्तिपरक विशेषताएं रहती हैं, लेकिन उनके व्यक्तित्व की मुख्य पहचान उनके टाईप चरित्र के रूप में रहती है।

'मैला आंचल' में कई समीक्षकों को चरित्रों की इतनी भरमार लगती है कि उनमें चरित्रों का विशिष्ट व्यक्तित्व उधड़ता नज़र नहीं आता। या कई ऐसे चरित्र हैं, जिन्हें लेखक ने महत्व तो बहुत दिया है, लेकिन जिनका उपन्यास में घटनागत या चरित्रगत उद्घाटन विस्तार से नहीं हुआ है, ऐसे एक चरित्र हैं बावनदास।

कई आलोचकों के विचार में 'मैला आंचल' में बावनदास न सिर्फ केंद्रीय चरित्र हैं, वसन् उपन्यास की पूरी आत्मा इस चरित्र के साथ जुड़ी हुई है। यद्यपि उपन्यास में बावनदास बहुत कम समय के लिए अवतरित होता है और कथा के विकास में बहुत कम योगदान करता है। बावनदास के चरित्रांकन में यह अंतर्विरोध ज़रूर है, लेकिन यह भी सच है कि इस चरित्र में उपन्यास की आत्मा भी बसी हुई है। वास्तव में उपन्यास की धुरी भारतीय जन की स्वतंत्रता व उसके जीवन स्तर पर स्वतंत्रता के वास्तविक प्रभाव से जुड़ी है। इस अर्थ में बावनदास अत्यंत महत्वपूर्ण चरित्र है, यह गांधीवादी जीवन मूल्यों का जीवन्त प्रतीक है। और भारतीय समाज में आज़ादी मिलने के 6-8 महीने के भीतर ही गांधी की भी हत्या होती है और गांधीवादी जीवन-दर्शन व जीवन मूल्यों की भी। गांधीवादी जीवन दर्शन सामान्य भारतीय जन की कलयाण कामना करता था, लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस सामान्य भारतीय जन की कहीं सुनवाई नहीं हुई, वरन् इसकी 'अपने' शासकों के हाथों और भी दुर्गति हुई। बावनदास की जघन्य हत्या, सामान्य तन की दुर्दशा को प्रतीक रूप से उद्घाटित करती है।

उपन्यास के प्रभुताशाली वर्गों के प्रतिनिधि चरित्र हैं - तहसीलदासर विश्वनाथ प्रसाद मल्लिक, ठाकुर रामकिरण सिंह और हरगौरी सिंह, खेलावन सिंह यादव, दुलार चंद कापरा इत्यादि। लेखक ने इन चरित्रों में स्वार्थ प्रियता, पाखंड व शोषित वर्गों पर बिना संकोच अत्याचार करने, अंतरात्माहीन होने की स्थितियां उद्घाटित की हैं। यद्यपि व्यक्तिगत स्तर पर इन चरित्रों में कुछ अंतर भी दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद की एकमात्र संतान है कमली। हजार बीघा ज़मीन से मालिक होकर भी वे उसकी शादी नहीं कर पाते, जिससे कमली मानसिक रूप से रोगी हो जाती है और डॉ. प्रशांत कुमार का प्रेम ही उसका वास्तविक उपचार

कर पाता है। यहाँ लेखक ने तहसीलदार के चरित्र के दो अंतर्विरोधी रूप अंकित किए हैं। एक पिता के रूप में वह अत्यंत स्नेहितल, कोमल हृदय, चिंतातुर है, जबकि एक ज़मींदार के रूप में वह क्रूर, स्वार्थी व अत्याचारी है। डॉ. प्रशांत उसके दोनों रूपों को देखता व विश्लेषित करता है। डॉ. स्वयं कमली से प्यार करता है अतः शोषित वर्गों से सहानुभूति रखकर भी वह विश्वनाथ प्रसाद को कई बातों में नापसंद तो करता है, लेकिन उससे नफरत नहीं कर पाता। यही विश्वनाथ प्रसाद सिंह अपनी बेटी कमली और डॉ. प्रशांत कुमार के विवाह की खुशी में अपने असामियों को पांच-पांच बीघा ज़मीन लौटाने की घोषणा भी करता है।

रेणु ने दुलारचंद कापरा आदि एकाध शोषक को छोड़ कर, जिसका चरित्रांकन वैसे भी सांकेतिक मात्र हुआ है, अपने अन्य शोषक चरित्रों को भी अपनी संवेदना और सहानुभूति दी है। संथालों के हाथों ठाकुर हरगौरी के मारे जाने पर, हालांकि वह बहुत उद्वेग व अत्याचारी था, लेखक ने उसके परिवार के दुःख के अंकन में संवेदना से काम लिया है, जबकि आदिवासी संथालों के प्रति अपनी घोषित सहानुभूति के बावजूद उन परिवारों की भीतरी व्यथा कथा से रेणु अपने पाठकों को परिचित नहीं करवाते।

‘मैला आंचल’ के स्त्री चरित्रों में सर्वप्रमुख हैं - कमली और लछमी। कमली तहसीलदार की बेटी है, जो युवावस्था में प्रेम की प्यासी है, डॉ. प्रशांत कुमार से प्रेम-बंधन में बंधकर उसका उपचार होता है, लेकिन इसी प्रेमबंधन में उसके चरित्र के कुछ पहलू भी उघड़ते हैं। कमली अत्यंत संवेदनशील है, साथ ही वह प्रबुद्ध भी है। डॉ. की प्रतीक्षा में वह इतना साहित्य पढ़ती है, शरत चंद्र, बंकिम चंद्र, तमाम बंगाली लेखक उसे अच्छे लगते हैं, जिनकी रचनाएं पढ़-पढ़ कर वह रोती भी है व उन चरित्रों से अपनी अस्मिता भी जुड़ी देखती है। कमली उन भारतीय स्त्रियों की प्रतिनिधि चरित्र है जो प्रेम के अपना सर्वस्व होम कर सकती है। वह डाक्टर को जी-जान से प्यार करती है और उसके प्रेम में कुंआरी मां बनने में भी उसे लाज, संकोच या भय नहीं है। कमली को रेणु ने जितनी संवेदना दी है, उतनी ही संवेदना दुःखों की मारी लछमी को भी दी है। अबोध बालिका, जो मठ पर पालने पोसने, पढ़ाने लिखाने के लिए महंत सेवादास द्वारा लाई गई, लेकिन जिसने उसके किशोरावस्था में पहुंचते ही उसका दैहिक शोषण आरंभ कर दिया और बेचारी लछमी, वह इस शोषक महंत से घृणा भी नहीं कर सकती, क्योंकि वह उसका अन्य भक्षकों से रक्षक है और उसके जीवन का आधार व सहारा भी।

लेकिन स्त्री का दैहिक शोषण कितना भी क्यों न हो, वह सच्चा प्रेम उसी से करती है, जिससे उसके मन का मेल हो। और लछमी के मन का मेल है - स्वतंत्रता सेनानी बालदेव जी से, बालदेव जी को भी लछमी आकर्षित करती है और वे भी सामाजिक रूढ़ियों या मूल्यों की परवाह न कर उसके प्रेम-बंधन में बंध कर उसके साथ रहने लगती है।

लछमी के शोषण द्वारा रेणु ने भारतीय समाज में स्त्री की वास्तविक स्थिति को अंकित किया है, विशेषतः निर्धन स्त्री की। कमली संपत्तिशाली वर्ग की स्त्री है, इसलिए उसे कुछ सामाजिक दर्जा व सुविधा प्राप्त हैं, लेकिन लछमी दासी है, जिसे कोई भी महंत अपनी रखेलिन बना सकता है।

लछमी के व्यक्तित्व में भी संवेदनशीलता, समझदारी व दबंगता के गुण हैं। लरसिंघदास जैसे लार टपकाते साधुओं से निपटने की क्षमता भी उसमें विकसित हो गई है।

कमली व लछमी के अतिरिक्त गणेश की नानी, मंगला आदि स्त्री चरित्रों को भी रेणु ने संवेदनशीलता से चित्रित किया है। स्त्री चरित्रों के प्रति रेणु के सृजन में विशेष सौंदर्य बोध है, स्त्री-पुरुष संबंधों में वे उन्मुक्तता को भी कोई नकारात्मक मूल्य के रूप में नहीं देखते।

‘मैला आंचल’ के राजनीतिक व सामाजिक रूप से सक्रिय व महत्वपूर्ण चरित्र हैं - बालदेव, कालीचरण, डॉक्टर प्रशांत कुमार, चलित्तर कर्मकार आदि। बावनदास की चर्चा हो चुकी है। ये सभी चरित्र अपने अपने ढंग से महत्वपूर्ण हैं, लेकिन इनमें प्रतिनिधिक समानता मिलती है। ये

सभी चरित्र, चाहे किसी भी राजनीतिक विचारधारा के क्यों न हों, मध्यम वर्ग के समान आधार वाले चरित्र हैं, चलित्तर कर्मकार को छोड़ कर जो ज़ाहिरा रूप में कभी सामने नहीं आता, जिसकी सिर्फ चर्चा ही होती है।

इनमें बालदेव कांग्रेस कार्यकर्ता व स्वतंत्रता सेनानी हैं, देशभक्ति में उन्होंने यातनाएं भी सही हैं और कारावास भी भोगा है। स्वभाव में वे कुछ सीधे, भोले भाले जीव हैं, कुछ पिछड़ापन भी उनमें है, क्योंकि उन्हें लगता है 'कॉमरेड' मुर्गी का अण्डा खिलाकर बनाया जाता है। लेकिन वे ईमानदार व मानवता से प्रेम करने वाले हैं। गांव का हित चाहते हैं। गांव में राशन डिपो मिलता है तो भ्रष्टाचार बंद करते हैं। हस्पताल बनाने में आगे बढ़कर योगदान करते हैं। लछमी के प्रति आकर्षित होते हैं तो उसके साथ जीवन साझा करने को भी प्रस्तुत होते हैं, जाति-बंधनों से मुक्त हैं।

कालीचरण युवा शक्ति के प्रतीक हैं उन्हें कांग्रेस पार्टी से ज्यादा क्रांतिकारी पार्टी सोशलिस्ट पार्टी आकर्षित करती है, जो 'ज़मीन हलवाहकों को' का नारा देती है व संघर्ष की मार्ग दिखाती है। कालीचरण 'बम फोड़ने वाले मस्ताने भगत सिंह' से भी प्रभावित है। वह भी संवदेनशील प्रेमी है। मंगला उसे अच्छी लगती है, लेकिन उससे चार हाथ की दूरी वह बनाए रखता है।

चलित्तर कर्मकार भूमिगत क्रांतिकारी है, जो वर्ग संघर्ष में यकीन रखता है, उसके साथ कोई भी अपने को नहीं जोड़ना चाहता। केवल कम्युनिस्ट पार्टी ने उसके वारंट वापिस लेने की मांग कर रखी है।

डॉ. प्रशांत कुमार वास्तव में उपन्यास का केंद्रीय चरित्र है, जो स्वयं लेखक के विचारों का प्रतिनिधि है। डॉ. प्रशांत के चरित्र के विकसित होने का अवाकश भी उपन्यास में मिला है व लेखक की संवदेना भी उसे पर्याप्त मात्रा में मिली है। डॉ. प्रशांत सही मायनों में जनहित से जुड़ा 'कॉमरेड' बुद्धिजीवी है, जिसने विदेश का वज़ीफा छोड़ कर भारतीय देहात का दुःख दर्द महसूस करना, उसे दूर करना, पीड़ित जन से जुड़ना अधिक श्रेयस्कर माना और डॉ. प्रशांत हर स्तर पर मेरीगंज की पीड़ित मानवता से जुड़ता है। वह मलेरिया पर शोध भी करता है, गांव वासियों को चिकित्सा प्रदान कर जीवनदान भी करता है व उनके दुःख सुख और सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग भी बनता है। कमली को अपनी संहरी बनाकर वह शहर का रहा सहा आकर्षण भी मन में नहीं रहने देता और जेल से रिहा होकर गांव को ही अपनी कर्मभूमि बनाने का निर्णय लेता है। हालांकि शहर में उसे ऊंचे पद, मान-सम्मान, सुख-सुविधा सब कुछ मिलता था।

आदिवासी संथालों के विद्रोह को यदि किसी चरित्र की सहपनुभूति मिली तो वह प्रशांत कुमार ही था। प्रशांत कम्युनिस्ट समर्थक समझा जाता था।

लेकिन बालदेव, कालीचरण व प्रशांत में वर्ग चरित्र एक समान है। तीनों ही अपनी मध्यवर्गीय चारित्रिक सीमाओं को पार कर संघर्षशील वर्ग से नहीं जुड़ते। उनकी सहानुभूति वहीं तक है, जहाँ तक उनका जीवन व जीवन शैली सुरक्षित है। आदिवासी संथालों के विरुद्ध बालदेव और काचरण दोनों गवाही देते हैं और उन्हें आजीवन कारावास दिलवाने में शामिल होते हैं। डॉ. प्रशांत को संथालों से सहानुभूति है, लेकिन इस सहानुभूति को वह सक्रिय रूप नहीं देते। कुल मिलाकर 'मैला आंचल' में लेखक की अपनी वर्ग सीमाएं भी मध्यवर्ग तक ही सीमित हैं, इसलिए उनके सर्वश्रेष्ठ चरित्र भी मध्यवर्गों से ही आते हैं, ताकि मेहनतकश या संघर्षशील वर्गों से। रेणु स्वयं सोशलिस्ट विचारों से प्रभावित रहे हैं व जयप्रकाश नारायण के आंदोलन के समर्थक भी, लेकिन बिहार में जन क्रांति वर्ग संघर्ष के ज़रिए ही किसी निष्कर्ष तक पहुंचेगी, इस निष्कर्ष तक रेणु नहीं पहुंच पाते।

रेणु ने 'मैला आंचल' की संरचना में रोचक कथावस्तु व जीवंत चरित्रांकन से काम लिया है। उपन्यास को सशक्त बनाने वाला एक और पक्ष है, इसकी भाषा, जिस पर आगे विचार किया जाएगा।

10.3 मैला आंचल : भाषा शिल्प

आंचलिक उपन्यास को अन्य उपन्यासों से अलगाने वाले पक्षों में एक पक्ष है भाषा। कई बार तो केवल भाषा के आधार पर ही कई उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास मान लिया जाता है। यद्यपि भाषा आंचलिकता की अभिव्यक्ति का एक ही पक्ष है, लेकिन यह एक पक्ष ही काफी सबल पक्ष है। किसी भी भव के केंद्रीय या स्तरीय स्वरूप से अंचल विशेष की भाषा इस हद तक अलग व विशिष्ट होती है कि कई बार भाषा के इस विशिष्ट स्वरूप के कारण संप्रेषण बाधा भी होने लगती है। जैसे 'मैला आंचल' को ग्रहण करने में पंजाबी या दक्षिण भारतीय हिंदी पाठकों को समस्या आती है, वैसे ही कृष्णा सोबगती के 'ज़िंदगीनामा' जैसे उपन्यास को ग्रहण करने में बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश या दक्षिण भारतीय हिंदी पाठकों को दिक्कत आती है।

'मैला आंचल' का भाषा शिल्प उपन्यास की बहुत बड़ी शक्ति है, हालांकि 'मैला आंचल' ही आंचलिकता का स्वरूप केवल इसकी भाषा के कारण नहीं है। 'मैला आंचल' में आंचलिकता अपने बहुविध रूप में प्रस्तुत हुई है, उपन्यास में सृजित भाषा ने इस बहुरंगी आंचलिकता को अत्यंत संरस व सजीव बनाने में अवश्य ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

उपन्यास में भाषा भी सृजनशील रूप में अभिव्यक्त हुई है। कई भाषा प्रेमी या भाषा वैज्ञानिक को इस उपन्यास की भाषा पर ही मुग्ध व इससे सराबोर भी हो सकते हैं या फिर समाज भाषा विज्ञान की दृष्टि से या विखंडन पद्धति से उपन्यास का विश्लेषण भी कर सकते हैं।

उपन्यास में भाषा ने जिन स्तरों पर अपनी सृजनशीलता अभिव्यक्ति की है, उनमें लोकगीत व लोक संगीत के पुनः सृजन का एक स्तर है। इस स्तर में त्योंहारों, पर्वों का अपना रंग भी भाषा के माध्यम से आकार ग्रहण करता है। एक अन्य स्तर है, जन-व्यवहार का। मिथिला अंचल के मेरीगंज गांव व आसपास के क्षेत्र में जन व्यवहार में जो भाषा आती है, लेखक ने उसे भी उपन्यास में यथार्थ रूप से अभिव्यक्ति दी है। भाषा का तीसरा स्तर है, जिसके द्वारा विवरण के लिए अपनाई गई भाषा शैली। भाषा अपना सृजनशील रूप एक अन्य स्तर पर अभिव्यक्त करती है, अंचल के विशेष मुहावरों, लोकोक्तियों आदि के सृजन रूप में।

इस प्रकार रेणु ने 'मैला आंचल' में भाषा की सृजनशीलता की क्षमता का भरपूर उपयोग किया है और अभिधा, लक्षणा व व्यंजना सभी रूपों में उसका प्रयोग किया है।

लोकगीत-लोकसंगीत व मैला आंचल की भाषा

लोकगीत व लोकसंगीत का सृजन 'मैला आंचल' में उपन्यास के आरंभ से लेकर अंत तक जारी रहता है और पाठक इसके रस में सराबोर रहता है। उपन्यास के तीसरे अध्याय के अंत में लेखक ने अखाड़े में बजते ढोल का चित्र द्वारा संगीतमय शब्द बिंब से खींचा है - ढाक-ढिन्ना, ढाक-ढिन्ना! (पृष्ठ 19) चौथे अध्याय के शुरू में ही ब्रह्म बेला में भजन गायन से गीत संगीत दोनों के ही बिंब उघाड़े हैं

जागहु झतगुरु साहेब

डिम-डिमिक-डिमिक, डिम-डिमक-डिमिक

भोर भयो अब भरम भयानक भानु देखकर भागाजी,

भजन गायन में गीत और संगीत दोनों का योग है। रामदास खंजडी बजाता है जो स्वर निकालती है - 'डिम-डिमिक। रूनु झुनुक-झुनुक ' और महंत व लछमी के कंठ स्वर से भजन के शब्द आकार लेते हैं।

कबीर पंथ में यह भजन व संगीत का सृजन उपन्यास में अनेक स्थलों पर सृजित होता है, जिसे रेणु ने भाषा का ऐसा जामा पहनाया है कि यह संगीतमय बिंब चाक्षुष बिंब बनकर आंखों के सामने आ जाते हैं। महंत सेवादास के देहांत पर शोकमय वातावरण को भी लोकशैली के गायन व संगीत सृष्टि द्वारा रेणु ने भाषा के सृजनात्मक रूप में बांधा है

कांचहि बाँस के पिंजड़ा
जामे दियरो न बाती हो,
अरे हंसा उड़ल आकाश
कोई संगी न साथी हो!

मिथिला अंचल के मधुर लोकगीत प्रस्तुत हुए हैं - कमली प्रसंग में या होली आदि पर्वो-त्यौहारों के अवसर पर। रेणु ने 'मैला आंचल' में अपने स्त्री पात्रों के मन के भावों को प्रकट करने के लिए भी अंचल के मधुर लोकगीतों का सृजनात्मक उपयोग किया है। कमली की जांच के समय जब डॉ. प्रशांत कुमार अपना ट्रांसिस्टर उसके पास छोड़ आता है तो सवितादेवी के गाए मैथिल लोकगीत को उपन्यास में रेणु ने इस ढंग से प्रयुक्त किया है कि उपन्यास की सरसता बढ़ जाती है

माइगे, हम न वियोहब अपन गौरा के
जौ बुढ़वा होइत जमाम गे माई! (पृष्ठ 47)

तंजिमा टोली में सुरंगा-सदाब्रिज की लोककथा के गायन का प्रसंग रेणु ने पन्यास में घूणित कर मिथिला अंचल में प्रचलित लोक कथाओं, लोकगीतों को फिर साकार किया है-
सासू मोरा मरे हो, मरे मोरा बहिनी से

मरे ननद जेठ मोर जी!
मरे हमार सब कुछ पलिकखा से,
फसी मछली परेश से डोर जी! (पृष्ठ 47)

इन प्रचलित लोककथाओं के प्रसंग द्वारा लेखक ने अपने पात्रों के प्रेम प्रसंगों की व्याख्या भी की है।

भडजिआ लोकगान मिथिला का लोकप्रिय गीत है, सो रेणु ने गाडीवानों के दल के माध्यम से उपन्यास में इस गान को प्रस्तुत कर दिया

चढली जवानी मोरा अंग-अंग कडके से
कब हो इहँ गवना हमार रे भडजिया!

लेखक ने प्रसंग जोड़ दिया प्रेम दीवानी नायिका कमली से, उसकी तो कोई मौजाई ही नहीं, वह बेचारी 'किससे दिल की बात कहे?'

किसान जीवन के कुछ अपने विशेष पर्व होते हैं। मिथिला अंचल में एक पर्व है - खम्हार यानि खलिहान। जब धान की फसल का लेखा-जोखा है और ज़मींदार का, किसान का चाव है। साधारण किसान तो घाटे में ही रहेगा, लेकिन ज़मींदार की मौज, सो उसके घर जश्न का दिन। उसके घर होता है मिथिला अंचल का प्रसिद्ध लोकनृत्य-विदापत। विदापत नाच का माहौल पैदा करता है - मृदंग। विदापत नाच का माहौल पैदा करता है - मृदंग। मृदंग पर बजते संगीत को शब्दों में बांध देते हैं, रेणु

तिरकिट धिन्ना, तिरकिट धिन्ना!
धिन तक धिन्ना, धिन तक धिन्ना!

ढोलक, मृदंग आदि साजों की संगीतमय धुनों को शब्दबद्ध करना, यह रेणु के भाषा शिल्प का कमाल है।

डॉ. प्रशांत कुमार के सोचने के क्रम में भी रेणु ने लोकगीतों का सृजनात्मक रूप उकेर दिया है - अपभ्रंश की कोमल गीत पंक्तियाँ - 'पिया मइले डुमरी के फूल रे पियवा मइले।' डॉ. को समझ आ जाता है कि मिथिला अंचल ने कैसे विद्यापति जैसा कवि पैदा कर दिया, उसे लगता है कि विद्यापति के मान 'हमारी टूटी झोंपड़ियों में ज़िंदगी के मधुरस बरसा रहे हैं।' होली उत्तर प्रदेश और बिहार का ऐसा त्यौहार है कि गरीब से गरीब आदमी भी अपना दुःख अभाव भूल कर एक दिन तो फागुन मीहने की बावरी हवा में खो जाता है। होली पर नाचना, गाना, रंग, अजीर, गुलाल में खो जाना और होली पर जोगिड़ा गाना तो बिहार का विशेष आकर्षण है। रेणु का 'मैला आंचल' का आंचलिक चित्र होली व जोगिड़ा के चित्रण के बगैर कैसे रूप ग्रहण कर सकता था?

जोगड़ा सर

जोगिड़ा सर

जोगी जी ताल न टूटे

तीन ताल पर ढोलक बाजे

ताक धिन्ना-धिन् धिन्नक धिन्नक

जोगी जी!

होली है! कोई बुरा न माने होली है!

रेणु ने अपनी भाषा से जोगिड़ा गान के संगीत प्रक्रिया का पूरा चित्र उघाड़ दिया है। 'जोगिड़ा' द्वारा कुछ भी कहा-अनकहा कहा जा सकता है। एक दिन के लिए सब कुछ माफ है चर्खा कातो, खदखद पहनो, रहे हाथ में झोली दिन दहाड़े करो डकैती बोल पुरानी बोली - जोनी जी सर- भाषा के इस गीत-संगीतात्मक प्रयोग के ज़रिए राजनीतिक स्थिति भी चित्रित कर दी है। 'मैला आंचल' का होली चित्रण 'गोदान' के होली चित्रण की याद भी दिला देता है। फर्क इतना है कि 'गोदान' में प्रेमचंद ने गीत-संगीत का प्रयोग कम, नौकर द्वारा नौटंकी के माध्यम से सामंती व्यवस्था का शोषण उघाड़ा है। यहाँ रेणु ने होली चित्रण को और अधिक सरस बना कर प्रस्तुत कर दिया है।

रेणु ने संचालित आदिवासी स्त्रियों के गीत भी उपन्यास में समाहित कर लिए हैं। संचाल टोली का मादल भी ज़ारे शोर से बचता है

डा डिग्गा, डा डिग्गा सर ता-धिन ता

रेणु की भाषा का संगीत के संदर्भ में भी अध्ययन संभव है, क्योंकि उन्होंने साजों के स्वरों को इतने सटीक शब्दों में बाधा है कि पाठक दंग रह जाता है।

वर्षा ऋतु तो उत्तर भारतीय लोकगान परंपरा में वैसा ही स्थान रखती है, जैसा होली पर्व। सो ऐसा कैसे हो सकता था कि रेणु वर्षा ऋतु के लोकगीत 'मैला आंचल' में प्रस्तुत न करते -

अडरे मास आसाढ हे। गरजे धन

बिजूरी-ई चमके सखि हे ए ए!

मौहे तजी कन्ता जाये पर-देसा आ-आ

कि उमडू कमला माई हे!

हँडरे! हँडरे - - - (पृष्ठ 151)

रेणु ने सिर्फ लोकगान ही नहीं, उन्हें संगीत के स्वरों में बांधकर, कण्ठ के आरोह-अवरोह के साथ शब्दों में बांधा है, जिससे सुविज्ञ पाठक इन्हें गा भी सकता है और गान लायक संगीत भी बांध सकता है।

उपन्यास में यदि परंपरा से प्रचलित लोककथाएं, लोकगीत व लोकसंगीत शब्दों में बांधे गए हैं तो भाषा का सृजनात्मक स्वरूप तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक घटनाओं को गीत-संगीत में बांधने में भी सफल रहा है

उठ मेहनतकश अब होश में आ
हाथ में झण्डा लाल उठा (पृष्ठ 737)

या.

जो जोतेगा सो बोयेगा
जो बायेगा सो काटेगा
जो काटेगा वह बांटेगा (पृष्ठ 97)

मिथिला अंचल की अपनी शैली में भी राजनीतिक गीत रचे गए

भरे देसवा के सब धन-धान विदेसवा में जाम रहे
मंहमी पड़त हर साल कृसक अकुलाम रहे (पृष्ठ 105)

10.3.1 जन व्यवहार की भाषा

लोकगीत लोकसंगीत, लोककथाओं के माध्यम से तो रेणु ने 'मैला आंचल' में भाषा की सृजनशीलता प्रकट की ही, उनके पात्रों को जन-व्यवहार की भाषा में भी बड़ी सरसता है और शब्दिक प्रयोग में बड़ी जीवन्तता, उपन्यास का आरंभिक वाक्य ही देखिए - 'मलेटरी ने बहरा चेथरू को गिरफ्तार कर लिया है। यहाँ मलेटरी शब्द मिलिट्री का जनभाषा में रूपांतरण है। गिरफ्तार को गिरफ्तार का रूप देकर रेणु ने शिष्ट भाषा के जन रूपांतरण की जो प्रक्रिया शुरू की है, वह उपन्यास के अंत तक चलती है। अधिकांशतः यह प्रक्रिया सहज व स्वाभाविक है, यानि जैसे मिथिला अंचल के सामान्य जन, गांव के किसान, मेहनतकश भाषा प्रयोग करते हैं, रेणु ने उसका वैसा ही चित्रणा उपन्यास में उघाड़ दिया है, लेकिन कहीं कहीं लेखक ने सचेत प्रयास द्वारा भी भाषा का जन-रूपांतरण किया है।

उपन्यास से हज़ारों ऐसे शब्दों को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है, जहाँ शिष्ट भाषा का जन-प्रयुक्त रूप कहीं अधिक आकर्षक जान पड़ता है - मोगलाही रोशन (स्टेशन) फिरारी (फरार) सुराजी (स्वराजी) डिस्टीबांट (डिस्ट्रिक्ट बोर्ड) जमाहिरलाल (जवाहरलाल) भेलटिपटी (बालंटियरी) उपास (उपवास) जोतखी जी (ज्योतिषी जी) मासन (भाषण) पुलोगराम (प्रोग्राम) इनकिलाब ज़िदाबाद (इन्क्लाब ज़िदाबाद) डागटर (डॉक्टर) सुशर्लिंग पाटी (सोशललिस्ट पार्टी) किरान्ती (क्रांति) टरेनि (ट्रेनिंग) सिकचिल्ली (शेखचिल्ली) इत्यादि।

जन व्यवहार में भाषा का रूप ग्रहण भाषा - वैज्ञानिक नियमों के अनुसार भी स्वाभाविक है। प्रायः भाषा जिह्वा सुविधा की प्रक्रिया में चलती है, जो शब्द जीभ को बोलने में असुविधा होगी, वह उस शब्द को अपनी सुविधानुसार ढाल लेगी। यही व्यक्तिगत सुविधा का रूप जब सामाजिक रूप ले लेता है तो ये शब्द अपने विशेष संदर्भों में प्रचलित हो जाते हैं।

जहाँ जहाँ रेणु ने ऐसे लोक शब्दों का प्रयोग किया है, जो बिल्कुल ही अंचल विशेष के ही शब्द हैं, वहाँ वहाँ उन्होंने उसका शिष्ट हिंदी रूप या अर्थ दे दिया है, जैसे खेकसियारी अर्थात् लोमड़ी। क्योंकि शब्दों की अर्थ प्रत्येक पृष्ठ के नीचे ही दे रखा है, इसलिए रसभंग का अधिक नहीं होता।

जन व्यवहार का भाषा प्रयोग रेणु ने 'मैला आंचल' में इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि इससे रचना की सृजनात्मकता में बाधा न पड़ कर रचना की जीवंतता ही बढ़ती है।

मैला आंचल: फणीश्वरनाथ रेणु,
बाणभट्ट की आत्मकथा :
हजारप्रसाद द्विवेदी

भाषा जन प्रयोग में मिथिला आंचल में प्रचलित अनेक मुहावरों, लोकोक्तियों का समावेश स्वाभाविक रूप में ही हो गया है। झगड़ा का धरम संकट, कुबेर का भण्डार, दिल में घर करना, गोलमाल करना, पेट में जलेबी का चक्कर आदि।

रेणु ने अपनी कथा की विवरण शैली में मिश्रित भाषा शिल्प का प्रयोग किया है। अधिकांशतः वह खड़ी बोली हिंदी के सर्वमान्य रूप को अपने विवरण का आधार बनाते हैं, जहाँ संवाद की आवश्यकता है, वहाँ उनके चरित्र अपनी पृष्ठभूमि के अनुसार जनभाषा या प्रचलित भष का प्रयोग करते हैं। लेकिन कहीं-कहीं रेणु अपने द्वारा औपन्यासिक विवरण शैली में भी देशी भाषा या जनभाषा का प्रयोग करने लगते हैं। दो उदाहरण

‘मंगलादेवी, चरखा सेंटर की मास्टरनी जी बीमार है।’ (पृष्ठ 175)

‘डिस्टीबोट के मिल्लिरी लोग आए हैं। बालदेव के

उत्साह का ठिकाना नहीं है।’ (पृष्ठ 15)

दूसरे उदाहरण के पहले वाक्य में जन भाषा प्रचलित रूप प्रयुक्त हुआ है, जबकि दूसरे वाक्य ‘बालदेव के उत्साह का ठिकाना नहीं है’ सामान्य खड़ी बोली का प्रयोग है।

लगता है अपनी विवरण शैली में रेणु भाषा प्रयोग के प्रति सजग तो रहे हैं, लेकिन किसी एक प्रयोग पर वे स्थिर नहीं रह पाए हैं।

कुल मिलाकर रेणु ने ‘मैला आंचल’ में भाषा शिल्प में अत्यंत सृजनात्मकता का परिचय दिया है। उनके भाषा प्रयोग में विविधता व जीवंतता है। भाषा शिल्प की सृजनात्मकता के बारण उपन्यास में सरसता भी आई है।

10.4 सारांश

इस इकाई में आपने ‘मैला आंचल’ के संरचना शिल्प के अंतर्गत ‘मैला आंचल’ के कथा शिल्प की प्रविधियों व चरित्रांकन में रेणु की विशेषताओं को लक्षित किया। भाषा शिल्प पर विचार करते हुए आपने ‘मैला आंचल’ में भाषा प्रयोग के विविध स्तरों, लोकगीत, लोकसंगीत पर्यावरण सृजन में भाषा प्रयोग, जन-व्यवहार में भाषा प्रयोग मुहावरे लोकोक्तियाँ व विवरण शैली का भाषा प्रयोग देखा।

कुल मिलाकर इस इकाई में आपने उपन्यास के रूपगत या शिल्पगत पक्ष पर विचार किया और यह कहा जा सकता है कि ‘मैला आंचल’ की सफलता उपन्यास की विषयवस्तु के स्तर पर तो है ही, शिल्पगत स्तर पर भी रेणु यहाँ एक सफल उपन्यासकार के रूप में प्रस्तुत होते हैं।

10.5 प्रश्न

1. ‘मैला आंचल’ के संरचना शिल्प की मुख्य विशेषताओं की चर्चा कीजिए।
2. ‘मैला आंचल’ में निर्मित कथा की शिल्पगत विशेषताएं बताइए।
3. ‘मैला आंचल’ में रेणु ने चरित्रांकन के लिए किन प्रविधियों का प्रयोग किया है।
4. ‘मैला आंचल’ में प्रमुख नारी पात्रों पर चर्चा कीजिए।
5. ‘मैला आंचल’ का नायक किसे कहा जा सकता है?
6. ‘मैला आंचल’ की भाषा की सृजनात्मकता पर प्रकाश डालिए।
7. भाषा शिल्प की दृष्टि से ‘मैला आंचल’ की प्रमुख विशेषताएं रेखांकित कीजिए।

1. नेमिचंद्र जैन, 'अधूरे साक्षात्कार', 1989, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. लक्ष्मीसागर वाष्णीय, 'हिंदी उपन्यास : उपलब्धियाँ', 1983 सं., राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. रामदरश मिश्र, 'हिंदी उपन्यास : एक अंतर्गता', 1982, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. इन्द्रनाथ मदान, 'आधुनिकता और हिंदी उपन्यास', 1980, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. नित्यानंद तिवारी/ निर्मना जैन (संपादक), हिंदी उपन्यास पचास के बाद', 1988, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
6. रामविलास शर्मा, 'आस्था और सौंदर्य', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. नगीना जैन, 'आंचलिकता और हिंदी उपन्यास', 1986, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली।
8. यश गुलाठी, 'प्रतिनिधि हिंदी उपन्यास' (भाग एक), हरियाणा साहित्य आकदमी, चंडीगढ़ (1989)।

इकाई 11 बाणभट्ट की आत्मकथा : भारतीय जीवनदृष्टि

इकाई की रूपरेखा

- 11.0 उद्देश्य
- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 बाणभट्ट की आत्मकथा : जीवनदृष्टि
 - 11.2.1 प्रेम की परिकल्पना
 - 11.2.2 नारी चेतना की अभिव्यक्ति
 - 11.2.3 संस्कृति और समन्वयात्मकता
- 11.3 बाणभट्ट की आत्मकथा : संरचना और शैली
- 11.4 संवाद योजना
- 11.5 विशिष्ट प्रसंग निर्मिति
- 11.6 सारांश
- 11.7 प्रश्न

11.0 उद्देश्य

एम.एच.डी.-3 'उपन्यास एवं कहानी' पाठ्यक्रम की यह ग्यारहवीं और खंड-3 की यह पहली इकाई है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसके माध्यम से जहाँ आप अतीत के एक विशिष्ट कालखण्ड की एक मनोरम झलक देखेंगे वही दूसरी ओर अपने वर्तमान जीवन के कुछ प्रेरणाप्रद तथ्यों को भी उजागर होते हुए पाएँगे। इस इकाई में आप:

- 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास की कलात्मकता से संबंधित विभिन्न बिंदुओं से परिचित हो सकेंगे,
- उपन्यास की कथा वस्तु की संरचना और अलंकृत शैली की विशिष्टता से परिचित हो सकेंगे,
- संवाद रचना में प्रयुक्त भाषा की सहजता, सरलता और पात्रों के मनो भावों को अभिव्यक्त करने की क्षमता से अवगत हो सकेंगे,
- विशिष्ट प्रसंग निर्मिति के महत्व और औचित्य को जान सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी-साहित्य जगत के एक विशिष्ट हस्ताक्षर हैं। साहित्येतिहासकार, आलोचक और निबंधकार उपन्यासकार के रूप में भी इन्होंने विशिष्ट उपलब्धि का परिचय दिया है। 'हिंदी साहित्य का अतीत', 'भारतीय धर्मसाधना', 'सूरदास', 'कबीर' आदि ग्रंथ उनके साहित्य की परख और इतिहास बोध की प्रखरता को रेखांकित करते हैं। 'अशोक के फूल', 'कल्पलता', 'कुटज' आदि निबंध-संग्रह, द्विवेदी जी को एक सर्वोत्तम ललित निबंधकार और भारतीय संस्कृति के उद्गाता के रूप में रेखांकित करते हैं। एक ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में भी उनकी निजता रेखांकित हुई है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' के साथ ही -पुनर्नवा', 'चारूचन्द्रलेखा' और 'अनामदास का पोथा' जैसे ऐतिहासिक उपन्यास द्विवेदी जी की कलात्मक क्षमता के साथ ही उनके प्रखर इतिहास बोध को भी रेखांकित करते हैं। इन उपन्यासों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता बोध के स्तर पर

ऐतिहासिकता और पौराणिकता की रक्षा करते हुए अपने युग और समाज के सच को भी उजागर करता है। समसामयिक सामाजिक यथार्थ को संकेतित करने की प्रवृत्ति ही द्विवेदी के उपन्यासों को समकालीनता से जोड़ती है।

‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ 1946 की रचना है। इसमें बाणभट्ट और महाराज हर्ष के एक छोटे कालखण्ड को आधार बनाया गया है। इस उपन्यास के केंद्र में स्वयं बाणभट्ट का जीवन है, जो राष्ट्रीय अस्मिता की प्रतीक तुवरमिलिंद की कन्या भट्टिनी की मुक्ति के महत् उद्देश्य को लेकर आगे बढ़ता है। लेकिन यहाँ द्विवेदी जी की जो मुख्य विशेषता है, वह केवल भट्टिनी की मुक्ति तक ही सीमित न रहकर पराधीन भारत की राष्ट्रीय मुक्ति, नारी मुक्ति को भी रेखांकित करती है। इस प्रक्रिया में द्विवेदी जी ने ऐतिहासिकता की पूरी तरह रक्षा करते हुए अपने युग के राष्ट्रीय आंदोलन के लिए अनिवार्य राष्ट्रीय एकता, सामाजिक-साम्प्रदायिक सद्भाव, नारी-मुक्ति, जातिवाद की भावना को अत्यंत कलात्मक ढंग से संकेतिक किया है। यह समूचा प्रयास उपन्यास को समकालीन यथार्थ से जोड़ता है। प्रस्तुत इकाई में हम इन तथ्यों का विवेचन-विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे।

11.2 बाणभट्ट की आत्मकथा : जीवनदृष्टि

‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ के सृजन के पीछे हजारीप्रसाद द्विवेदी का उद्देश्य अतीत-वैभव की भव्यता का चित्र प्रस्तुत करना नहीं था और न ही ऐतिहासिक घटनाओं एवं तिथियों को ब्योरेवार प्रस्तुत करना था। इस रचना का उद्देश्य था ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में तत्कालीन युगीन जीवन के आंतरिक यथार्थ को उद्घाटित करना। इसलिए ऐतिहासिक तथ्य और सांस्कृतिक तत्वों का आधार लेकर तत्कालीन युग-सत्य की खोज की गयी है। द्विवेदी जी ने एक युग-विशेष की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं की छानबीन कर समकालीन संदर्भों में उनकी संगति बिठायी है। इस उपन्यास के द्वारा मानवीय मूल्यों की चिंता, मानवता की स्थापना, नारी-स्वतंत्रता, जातिविहीन समाज की स्थापना के द्वारा स्वाधीन भारत की कल्पना को साकार करने का प्रयास किया गया है। अतः यह उपन्यास जितना ऐतिहासिक है उतना समसामयिक भी। यह लेखक की गहरी सूझ-बूझ, यथार्थवादी दृष्टिकोण और सर्जनात्मक विशिष्टता का ही प्रमाण है कि अतीतकालीन समस्याएँ अपने समय के संदर्भ में जितनी सार्थक है, आज के संदर्भ में उतनी ही संगत भी। अपने समय की स्थितियों के प्रति सजगता और कलात्मक चेतना के कारण द्विवेदी जी समय के अंतर को सहजता से दूर करते हैं। ऐतिहासिक कथ्य को कल्पना का आधार देकर मानवीय संवेदनाओं, जटील संबंधों को, सच्चे प्रेम और चिंताओं को वास्तविक धरातल से जोड़ देते हैं। इससे उपन्यास में जितनी गहराई, व्यापकता है उतनी ही विश्वसनीयता भी शामिल है।

महाराज हर्षवर्धन के राज्यकाल में जो विदेशी आक्रमण हुए तथा उनके परिणामस्वरूप जनता को जो असहनीय कष्ट और अमानवीय यातनाएँ भोगनी पड़ी इसका चित्रण योग्य विम्बयोजना के माध्यम से किया गया है। इस भयावह स्थिति से देश को उबारने के लिए ही उपन्यासकार द्विवेदीजी ऐतिहासिक दृष्टि व्यापक, मानवीय धरातल से उठती है, वे ऐतिहासिक बोध की सार्थकता को मानवीय उपयोगिता में मानते हैं। सामाजिक विकास की प्रक्रिया में इतिहास की वैज्ञानिक दृष्टि को कैसे उपयोग में लाया जा सकता है यह पहली बार ‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ के द्वारा स्पष्ट हो जाता है। इतिहास के विकास और पतन में जनसाधारण की भूमिका का महत्व जन संघर्ष और विकास की कहानी व्यक्ति के स्थान पर समूह का महत्व और जनसामान्य की सोच का क्या प्रभाव होता यह पहली बार द्विवेदीजी की इतिहास दृष्टि में परिलक्षित हुआ है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' के विजन में केन्द्रीय स्थिति एक ऐसी प्रेम-संवेदना की है जो लोकोत्तर है। उपन्यास का नायक बाणभट्ट निपुणिका और भट्टिनी के प्रेम का आलम्बन है। यह प्रेम अपनी गहनता, तीव्रता, त्याग और संयम में अद्वितीय है। निपुणिका का बाणभट्ट के प्रति प्रेम उद्दाम होते हुए भी आत्मबलिदान में समाप्त होकर उसे उदात्त बना देता है। द्विवेदी जी प्रेम के उस भारतीय आदर्श के कायल हैं जो मानता है कि तपस्या और लोकमंगल की भावना से सम्पन्न होने पर ही प्रेम स्थाई और कल्याणकारी होता है। कालिदास ने अपने काव्यों में इसी प्रेम का चित्रण किया है। बाणभट्ट की आत्मकथा में निपुणिका का बाणभट्ट के प्रति प्रेम कामजन्य था, इसी कारण वह कमल पत्र पर पड़ी जल की बूंद की तरह बिखर गया। पर जब यह प्रेम छह वर्षों के पश्चाताप और प्रायश्चित्त की आँच में तप कर कंचन बन गया तो इसमें स्थायित्व आ गया। बाणभट्ट की आत्मकथा की एक पात्र, महामाया, एक स्थान पर बाणभट्ट से कहती है : "स्त्री प्रकृति है। उसकी सफलता पुरुष को बाँधने में है, किन्तु सार्थकता पुरुष की मुक्ति में है।" (पृ. 91-92) निपुणिका पर महामाया के इस कथन का अद्भुत प्रभाव पड़ा है। जब निपुणिका को विश्वास हो जाता है, और बाणभट्ट भी इसकी पुष्टि कर देता है, कि वह बाणभट्ट को बाँधने में सफल हुई है तब वह उसे मुक्त कर अपनी सार्थकता प्रमाणित करती है और वह भट्टिनी तथा उसके बीच से हट जाती है। अपनी मृत्यु की घड़ी में भी वह परम सन्तुष्ट है।

भट्टिनी और बाणभट्ट का प्रेम तो और भी उदात्त है। बाणभट्ट भट्टिनी को, जो एक अपृहत राजकुमारी है, हर्षवर्द्धन के एक सामन्त के अन्तःपुर से निकाल कर उसकी रक्षा करता है। इस साहसिक अभियान के पीछे काम की नहीं, बल्कि कर्तव्य की प्रेरणा है। बाणभट्ट नारी का बेहद सम्मान करता है, वह नारी देह को देवमन्दिर मानता है। निपुणिका के प्रेम की उपेक्षा भी उसने अपने इसी मूल्यबोध के कारण, अनजान में, कर दी थी। निपुणिका की प्रेरणा से ही वह अपनी जान की बाजी लगाकर, भट्टिनी की रक्षा करता है। बाणभट्ट और भट्टिनी, साथ में निपुणिका भी, काफी दिनों तक साथ साथ रहते हैं। इसी साहचर्य से भट्टिनी के मन में बाणभट्ट के प्रति अनुराग का उदय होता है। पर यह प्रेम वाणी के माध्यम से तो कभी व्यक्त नहीं हो पाता, आंगिक चेष्टाओं और सात्विक भावों के रूप में भी बड़ी मुश्किल से व्यक्त होता दिखाई देता है। बाणभट्ट भट्टिनी की पूजा करता है; भट्टिनी के प्रति उसके मन में केवल श्रद्धा ही श्रद्धा है, समानता के स्तर पर प्रतिष्ठित होने वाला प्रेम नहीं। इस प्रेम में भावना का उफान कहीं नहीं दिखाई देता; शरीर प्राप्ति या काम का आकर्षण तो इसमें है ही नहीं। यह प्रेम केवल भावना के रूप में है जो अत्यन्त प्रगाढ़ तो है, पर काम का अतिक्रमण कर भक्ति के क्षेत्र में पहुँचा हुआ है। निपुणिका और भट्टिनी दोनों बाणभट्ट से प्रेम करती हैं, पर चूँकि यह प्रेम काम का अतिक्रमण कर चुका है, अतः वे एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या या असूया भाव से ग्रस्त नहीं हैं। उपन्यास के अन्त में बाणभट्ट के प्रति भट्टिनी का प्रेम अभिव्यक्त होता है, पर वह प्रेम मानव कल्याण के एक उदात्त लक्ष्य के प्रति समर्पित है, शारीरिक मिलन के प्रति नहीं।

बाणभट्ट की आत्मकथा में चित्रित प्रेम सामान्यतः उपन्यासों में चित्रित होने वाले प्रेम की तुलना में निश्चय ही विशिष्ट है। कुछ लोगों को यह प्रेम हवाई, अमनोवैज्ञानिक, आदर्शवादी, अयथार्थ आदि प्रतीत हो सकता है, पर इससे गुजरने का एक अपना सुख है। यह प्रेम उपन्यासकार के अपने विशिष्ट विजन की वस्तु है, जिसे विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत करने में उसे अद्भुत सफलता मिली है। यह विजन आगे चलकर एक व्यापक सामाजिक यथार्थ की पृष्ठभूमि निर्मित करता है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' प्रेम की संवेदना तक सीमित नहीं है। इसके भीतर एक राष्ट्रीय संकट का इतिहास बोध भी सन्निहित है। किसी भी राष्ट्र के इतिहास में राजनीतिक संकट,

जिसमें विदेशी शक्तियों का आक्रमण भी शामिल है, आते ही रहते हैं। जिस समय 'बाणभट्ट की आत्मकथा' लिखी जा रही थी, भारत परतन्त्र था और द्वितीय विश्वयुद्ध की विनाशालीला अपने चरम पर थी। उपन्यासकार की चेतना में यह परतन्त्रता राष्ट्रीय संकट के रूप में विद्यमान थी। इसकी अभिव्यक्ति बाणभट्ट की आत्मकथा में परोक्ष रूप में, हषवर्द्धन काल के राष्ट्रीय संकट के रूप में, हुई है। यद्यपि स्वयं हषवर्द्धन को हूणों के किसी आक्रमण का सामना नहीं करना पड़ा था, पर उसके राज्यकाल में पश्चिम से उनके आक्रमण की सम्भावना बनी हुई थी। बाणभट्ट की आत्मकथा में इस सम्भावना को औपन्यासिक प्रसंग के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रसंग के रूप में द्विवेदी जी का इतिहास-बोध भी व्यक्त हुआ है। इतिहासकार इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि भारत में विदेशी आक्रमणकारियों की सफलता का प्रमुख कारण सामान्य जनता की राजनीतिक उदासीनता या तटस्थता, हिन्दू समाज व्यवस्था के विरोधाभास, समाज का अनेक जातियों में विभाजन तथा निरन्तर बढ़ता जातिभेद और वर्गभेद था। इस काल की जनता को इस बात का बोध नहीं था कि विदेशी आक्रमणकारियों से युद्ध में उसकी भी कोई भूमिका हो सकती है। इसका एक बड़ा कारण गुप्तकाल के बाद जातिगत भेदभाव और संकीर्णता में निरन्तर होती वृद्धि थी। युद्ध क्षत्रियों का पेशा तो बहुत पहले से ही माना जाता था, पर धीरे धीरे यह मान्यता कट्टर संकीर्णता में परिणत होती गयी और युद्ध करना केवल राजपूतों का काम माना जाने लगा। इसके अतिरिक्त गुप्त काल में सामन्ती प्रथा का जन्म हुआ, जिसके कारण सेना में भी वर्णभेद की स्थिति पैदा हो गयी। जब तक सम्राट् शक्तिशाली रहे तब तक तो इस व्यवस्था से लाभ ही होता रहा पर केन्द्रीय शक्ति के दुर्बल होते ही यह व्यवस्था सैन्य शक्ति की दुर्बलता बन गयी। बाणभट्ट की आत्मकथा में इस राजनीतिक स्थिति को मार्मिक और ऐतिहासिक यथार्थ के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में कुमार कृष्णवर्द्धन, भर्तृहरि, लोरिकदेव आदि भारतवर्ष को हूणों के आक्रमण से बचाने के लिए किसी राजशक्ति की, विशेष कर पश्चिमोत्तर सीमान्त के प्रतापी शासक तुवर मिलिन्द की, भूमिका को आवश्यक मानते हैं। पर विद्रोहिणी महामाया भैरवी इसका विरोध करती है। वह एक जनसभा को सम्बोधित करती हुई कहती है :

“आर्य, सभासदो, उत्तरापथ के लाख लाख नौजवानों ने क्या कंकण वलय धारण किया है? क्या वे वृद्धों और बालकों, बेटियों और बहुओं, देवमन्दिरों और विहारों की रक्षा के लिए अपने प्राण नहीं दे सकते? क्या इस देश के विद्वानों में स्वतन्त्र संगठन बुद्धि का विलोप हो गया है?” (पृ. 218) वस्तुतः यह महामाया भैरवी का नौजवानों और विद्वानों से प्रश्न नहीं है, बल्कि उपन्यासकार का अपने समकालीन नौजवानों और बुद्धिजीवियों को आह्वान है। महामाया युवकों को ‘देवपुत्रों’ और ‘महाराजाधिराजों’ की आशा छोड़ने और संगठित होकर आक्रमणकारियों का सामना करने के लिए उदबुद्ध करती है। वह घोषणा करती है : “राजाओं, राजपुत्रों और देवपुत्रों की आशा पर निश्चेष्ट बने रहने का निश्चित परिणाम पराभव है। प्रजा में मृत्यु का भय छा गया है, यह अशुभ लक्षण है। अगर तुम आर्यावर्त को बचाना चाहते हो तो प्राण देने के लिए तत्पर हो जाओ। धर्म के लिए प्राण देना किसी जाति का पेशा नहीं है, वह मनुष्य मात्र का उत्तम लक्ष्य है। अमृत के पुत्रो, मैं भविष्य देख रही हूँ। राजा, महाराजा और सामन्त स्वार्थ के गुलाम बनते जा रहे हैं। प्रजा भीरु और कायर होती जा रही है। विद्वान् और शीलवान नागरिकों की बुद्धि कुंठित होती जा रही है। धर्माचरण में इसलिए व्याघात उपस्थित हुआ है कि राजा अन्धा है, प्रजा अन्धी है और विद्वान् अन्धे हैं। अपने आप को बचाओ, धर्म पर दृढ़ रहो, न्याय के लिए मरना सीखो, ब्राह्मण से चांडाल तक एक हो जाओ--चट्टान की तरह दुर्भेद्य एक। यही बचने का उपाय है।” (पृ. 220-21) वस्तुतः यह उद्बोधन उपन्यासकार का है जो ब्रिटिश शासन काल में भारतीय जीवन में व्याप्त मतभेद, जड़ता, कायरता और निर्णयहीनता से व्यथित था। तत्कालीन भारत की स्थिति से पीड़ित लेखक का सारा आक्रोश इस उद्बोधन द्वारा व्यक्त हुआ है। उपन्यास की महामाया

भैरवी गैरिकधारिणी भैरवियों का दल संगठित कर, समस्त देश में घूम घूम कर, युवा शक्ति को जगाती है। यह उपन्यासकार का नारी शक्ति को आह्वान भी माना जा सकता है।

बाणभट्ट की आत्मकथा में तत्कालीन हिन्दू समाज में व्याप्त स्तरभेद और जातिभेद की ओर भी इशारा किया गया है। महामाया भैरवी देश की रक्षा के लिए ब्राह्मण और चांडाल को एक हो जाने का सन्देश देती है। भट्टिनी यहाँ की सामाजिक व्यवस्था की दुखती रग पर उँगली रखती है : “ यहाँ इतना स्तर भेद है कि मुझे आश्चर्य होता है कि यहाँ के लोग कैसे जीते हैं। तुम यदि किसी यवन कन्या से विवाह करो तो यह इस देश में एक भयंकर सामाजिक विद्रोह माना जाएगा। जहाँ भारतवर्ष के समाज में एक सहस्र स्तर हैं वहाँ उनके (यवनों के) समाज में कठिनाई से दो-तीन होंगे। भारतवर्ष में जो ऊँचे हैं वे बहुत ऊँचे हैं, जो नीचे हैं उनकी निचाई का कोई आर पार नहीं; परन्तु उनमें सब समान हैं। उनकी स्त्रियों में रानी से लेकर परिचारिका तक के और गणिका से लेकर वार-विलासिनी तक के सैकड़ों भेद नहीं हैं।” (पृ.271) वस्तुतः यह चिन्ता अपने समय को लेकर उपन्यासकार की है जिसे उसने सातवीं शताब्दी के भारतीय समाज के चित्रण के रूप में प्रस्तुत किया है। महामाया भैरवी और भट्टिनी के द्वारा जो आह्वान उपन्यास में किया गया है, स्वाधीनता आंदोलन के दौरान वह कार्य महात्मा गांधी द्वारा सम्पन्न हुआ है। गांधी जी के आह्वान पर ही भारत की विभिन्न जातियों के लोग, किसान-मजदूर, हिंदू-मुसलमान एक जुट होकर स्वाधीनता संग्राम के लिए एक मंच पर आए। इस तथ्य की ओर भी उपन्यासकार संकेत करता है।

द्विवेदी जी के विजन में एक ऐसे विश्व समाज की परिकल्पना है जिसमें युद्ध न हो, विषमता न हो, अत्याचार न हो, अशान्ति न हो और नारी को पूर्ण सम्मान और बराबरी के अधिकार प्राप्त हो। अखंड विश्वशान्ति का सपना तभी साकार हो सकता है जब पूर्व और पश्चिम की सभ्यताएं एक दूसरे के श्रेष्ठ गुणों को ग्रहण कर आपस में मिल जाएँ। यह कार्य राजनीतिज्ञ नहीं, संवेदनशील कलाकार और कवि-लेखक ही कर सकते हैं। उपन्यासकार ने भट्टिनी की सोच और संवेदना के माध्यम से इस अवधारणा को प्रस्तुत किया है। भट्टिनी अनुभव करती है कि “ महानाश का खेल खेलने वाले म्लेच्छों में भी मनुष्य का हृदय है।” वह बाणभट्ट से प्रश्न करती है : “ क्यों भट्ट, ऐसा क्या नहीं हो सकता कि ऊँची भारतीय साधना उन तक पहुँचाई जा सके और निकृष्ट सामाजिक जटिलता यहाँ से हटाई जा सके। जब तक ये दोनों बातें साथ साथ नहीं हो जातीं, तब तक शाश्वत शान्ति असम्भव है।” (पृ.271) बाणभट्ट एक महान् कवि है, इसलिए भट्टिनी का विश्वास है कि वह अपनी कविता के माध्यम से इस पूर्ण सत्य का प्रचार कर सकता है। वह भट्ट से कहती है : “ तुम इस म्लेच्छ कही जाने वाली निर्दय जाति के चित्त में समवेदना का संचार कर सकते हो, उन्हें स्त्रियों का सम्मान करना सिखा सकते हो, बालकों को प्यार करना सिखा सकते हो।” (पृ.272) वह आगे कहती है : “ एक जाति दूसरी को म्लेच्छ समझती है, एक मनुष्य दूसरे को नीच समझता है, इससे बढ़ कर अशान्ति का कारण और क्या हो सकता है भट्ट ! तुम्हीं ऐसे हो जो नर लोक से लेकर किन्नर लोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय, एक ही करुणायित चित्त को हृदयंगम कर सकते हो। मनुष्य लोभवश, मोहवश, द्वेषवश पशुता की ओर बढ़ता जा रहा है, तुम इसके हृदय को संवेदनशील और कोमल बना सकते हो।” (पृ.272) बाणभट्ट के मन में संशय है कि “ क्या यह सम्भव है कि काव्य से मनुष्य की दयाहीन, विवेकहीन, धर्महीन वृत्तियाँ उच्चतर कार्य में नियोजित हो जाएँ।” पर निपुणिका के आत्म बलिदान और भट्टिनी की अवसन्नता के साथ ही बाणभट्ट की जड़ता समाप्त हो जाती है और वह कह उठता है : “ देवि, उठो, तुम्हें कातर होना नहीं शोभता। नर लोक से किन्नर लोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय का सन्धान पाना बाकी है। उठो देवि, आर्यावर्त को बचाना है।” (पृ.304) तत्पश्चात् दोनों इस कार्य को पूरा करने का संकल्प कर महावाराह को प्रणाम करते हैं जो उनके प्रेम की परिपूर्णता की भी द्योतक है।

कला विषयक दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि उपन्यासकार ने अपने विज्ञान को किस प्रकार रूप प्रदान किया है। उपन्यास में यह कार्य एक कल्पित कथासंसार के सृजन द्वारा सम्पन्न हुआ है। कथासंसार की रचना के लिए सामान्यतः एक कालविशेष और देशविशेष की कल्पना आवश्यक होती है, जिसमें मुख्यतः मानव प्राणी, कल्पित पात्रों के रूप में कार्यरत होते हैं। इस कथा संसार में प्रकृति और मानवेतर प्राणी भी सम्मिलित होते हैं, क्योंकि उनकी भूमिका प्रायः गौण होती है। द्विवेदी जी ने अपने विज्ञान को रूप देने के लिए सातवीं शताब्दी का काल और स्थाण्वीश्वर (थानेश्वर) से लेकर भद्रेश्वर दुर्ग (बलिया, उ.प्र.) और उज्जयिनी तक फैले देश का चयन किया है। इसके प्रमुख पात्र, बाणभट्ट और हर्षवर्धन, तो ऐतिहासिक हैं पर अन्य सारे पात्र कल्पित हैं। द्विवेदी जी ने अर्ध ऐतिहासिक या कल्पित पात्रों का अत्यन्त सर्जनात्मक उपयोग बाणभट्ट की आत्मकथा में किया है। ये पात्र इतिहास के बन्धन से मुक्त होकर भी ऐतिहासिक प्रभाव की सृष्टि में सहायक हैं। ऐतिहासिक पात्रों को भी उपन्यासकार ने, उनके ऐतिहासिकता की रक्षा करते हुए, सर्वथा नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। बाणभट्ट को तो उपन्यासकार ने एक ऐसे सजीव पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है, जहाँ इतिहास पहुँच ही नहीं सकता। इनके अतिरिक्त उपन्यास में दर्जनों ऐसे पात्र हैं जो अपनी संवेदनशीलता, करुणा, प्रेम, त्याग, बलिदान, कर्मठता, निष्ठा, कर्तव्यपरायणता, देशभक्ति आदि से इस कथा संसार को अद्भुत रमणीयता प्रदान करते हैं। बाणभट्ट की आत्मकथा में इतिहास और कल्पना का यह दुर्लभ संगम मन पर अद्भुत प्रभाव छोड़ता है।

11.2.1 प्रेम की परिकल्पना

बाणभट्ट की आत्मकथा में भारतीय जीवनदृष्टि की अभिव्यक्ति प्रचुर मात्रा में और सफलतापूर्वक हुई है। इस जीवनदृष्टि के कई पक्ष उपन्यास में उभरे हैं। इनमें प्रमुख पक्ष प्रेम-दर्शन का है। प्रेम साहित्य मात्र का, स्वभावतः उपन्यास का भी, सर्वाधिक प्रिय विषय है। बाणभट्ट की आत्मकथा में बाणभट्ट दो प्रेमिकाओं के प्रेम का आलम्बन बनता है। वे हैं--निपुणिका और भट्टिनी; उज्जयिनी की नगरवधू मदनश्री भी उसके आकर्षण में बँधती है, पर यह आकर्षण क्षणिक है। इनमें बाणभट्ट और भट्टिनी, दोनों में से कोई भी काम-राग से अन्धा नहीं हैं। निपुणिका आरम्भ में बाणभट्ट के प्रति मोहग्रस्त है, पर उसका यह मोह भी छह वर्षों की तपस्या से कट जाता है और अन्त तक पहुँच कर तो वह, अपना सर्वस्व भट्टिनी और बाणभट्ट को देकर स्वयं प्रेम के मार्ग से हट जाती है।

इस प्रेम प्रसंग का किंचित् विस्तार अपेक्षित है। बाणभट्ट के चरित्र की दुर्लभ विशेषता यह है कि वह नारी का बहुत सम्मान करता है। वह स्त्री को भोग्या या काम की वस्तु नहीं, बल्कि देवमन्दिर मानता है। उसकी नाट्यमंडली की अभिनेत्रियाँ कुलवधुओं का सम्मान और गरिमा प्राप्त करती हैं। पर उसकी एक अभिनेत्री, निपुणिका, उससे प्रेम कर बैठती है और उससे प्रोत्साहन न पाकर, ग्लानिवश, उसकी नाट्यमंडली छोड़ कर भाग जाती है। पर जल्द ही निपुणिका को अपनी भूल का भान हो जाता है। फिर भी वह बाणभट्ट के पास लौट कर नहीं आती। छह वर्षों तक वह इधर उधर भटकती, मारी मारी फिरती है। उसे इस बात का किंचित् आभास है कि बाणभट्ट के मन में उसके प्रति अनुराग है, पर उस अनुराग में काम का भाव नहीं है। निपुणिका के चले जाने के बाद बाणभट्ट का उसकी खोज में भटकना और फिर अपनी नाट्यमंडली को ही तोड़ देना इसका परिचायक है। निपुणिका इस देवोपम चरित्र वाले व्यक्ति को अपने काम-राग में बाँधने की कुवासना से इतनी दुःखी है कि वह प्रायश्चित्त भाव से छह वर्षों तक भटकती रहती है। यह एक प्रकार की तपस्या ही है। इस तपस्या से उसका प्रेम पावन बन जाता है। छह वर्षों के बाद जब बाणभट्ट से उसकी अचानक मुलाकात होती है तो उसके प्रति निपुणिका की प्रेमभावना वासना से मुक्त हो चुकी

है। ठीक इसी समय, जिस 'छोटे राजकुल' के अन्तःपुर में निपुणिका परिचारिका है, वहाँ बन्दिनी के रूप में भट्टिनी लायी जाती है। भट्टिनी को 'छोटे राजकुल' का सामन्त अपनी पटरानी बनाना चाहता है। निपुणिका भट्टिनी के उद्धार के लिए चिन्तित है। निपुणिका बड़े अधिकार से बाणभट्ट को भट्टिनी के उद्धार का कार्य सौंपती है और बाणभट्ट भट्टिनी को अन्तःपुर से निकाल कर, निपुणिका के साथ, नगर से दूर एक निर्जन चंडी मन्दिर में ले जाता है। इस घटना से बाणभट्ट के प्रति भट्टिनी का अनुराग प्रकरण आरम्भ होता है, जिसे शास्त्रीय भाषा में 'साहचर्यजन्य प्रेम' कहा जा सकता है।

भट्टिनी और निपुणिका को राजकोप से बचाने के लिए बाणभट्ट को, हर्षवर्द्धन के भाई और महासान्धिविग्रहिक कुमार कृष्ण के सहयोग से, उन्हें लेकर मगध के लिए प्रस्थान करना पड़ता है। इस बीच अनेक घटनाएँ घटित होती हैं जो भट्टिनी के मन में बाणभट्ट के प्रति प्रेम का कारण बनती हैं। पर भट्टिनी के प्रति बाणभट्ट का अनुराग उसके अवचेतन में भले ही स्थित हो, वह चेतन स्तर पर कहीं भी व्यक्त नहीं होता। चेतना के स्तर पर वह भट्टिनी की पूजा ही करता है। वह उसके सौन्दर्य से बार बार अभिभूत होता है, उसे देखते ही उसकी काव्यधारा बाँध तोड़ कर प्रवाहित होने लगती है। बाणभट्ट स्वयं भी यह नहीं जानता कि भट्टिनी के प्रति उसके मन में प्रेम है, यद्यपि भट्टिनी के लिए प्राण भी दे देने में उसे कोई द्विधा नहीं है। वह अपने को भट्टिनी का 'सेवक' ही मानता है, यद्यपि आरम्भ में ही भट्टिनी उसे अपना 'अभिभावक' स्वीकार कर लेती है। पहली बार अवधूत अघोर भैरव भट्टिनी के प्रति बाणभट्ट के प्रेम का संकेत देते हैं। वे बाणभट्ट से कहते हैं—“देवता ने जिस रूप में तुझे सबसे अधिक मोहित किया है उसी की पूजा कर।” महामाया भी उससे यही कहती है : “त्रिभुवनमोहिनी ने जिस रूप में तुझे मोह लिया है, उसी रूप की पूजा कर, वही तेरा देवता है।” यह संकेत स्पष्टतः भट्टिनी की ओर है। भट्टिनी के प्रति बाणभट्ट का यह पूजा-भाव प्रायः अन्त तक बना रहता है। जब मौखरि सैनिकों के दस्ते का नायक विग्रहवर्मा बाणभट्ट और भट्टिनी को 'ब्राह्मण दम्पति' कहता है तो बाणभट्ट इसे सुनकर अपने कानों पर हाथ रख लेता है। भट्टिनी का 'प्रेमी' होने की कल्पना ही उसे धृष्टता और लज्जास्पद प्रतीत होती है, यद्यपि भट्टिनी का उसके प्रति प्रेम दिनोदिन प्रगाढ़ ही होता जाता है। पर यह प्रेम भी शारीरिक विकारों द्वारा व्यक्त नहीं होता।

भट्टिनी के चरित्र में यह संयम और भी उदात्त रूप में सामने आता है। बाणभट्ट के प्रथम दर्शन, सम्भाषण, और फिर साहचर्य से, जो भाव पैदा होता है, उसे वह प्रेम या 'अनुराग' नहीं कहती, उसे बस इतना ही लगता है कि उसका नारी जन्म 'सार्थक' हो गया। उपन्यास में कहीं भी, जैसा हम देख चुके हैं, भट्टिनी का अनुराग शब्दों या शारीरिक विकारों के माध्यम से व्यक्त नहीं होता, अधिक से अधिक वह मानसिक विकारों के रूप में ही व्यंजित होता है। उपन्यास के अन्त में, जब निपुणिका का निधन हो जाता है, भट्टिनी अपने इस अनुराग को एक महान् मानवीय लक्ष्य से जोड़कर उदात्त बना देती है।

निपुणिका रत्नावली की वासवदत्ता की प्रेम-दृष्टि से प्रभावित होकर भट्टिनी और बाणभट्ट को मिलाने का संकल्प करती है। भट्टिनी भी निपुणिका के अस्वस्थ होने पर जिस प्रकार उसकी सेवा करती है और बाणभट्ट से उसे, सम्मोहन की बाधा दूर करने के लिए, सौरभद के शिव सिद्धायतन में ले जाने को कहती है, वह निपुणिका के प्रति उसके चरम स्नेह भाव का निदर्शन है। भट्टिनी जानती है कि निपुणिका बाणभट्ट से प्रेम करती है, पर उसके मन में भी उसके प्रति ईर्ष्या या असूया का भाव नहीं है। प्रेम का यह रूप अत्यन्त मनोहर है।

रत्नावली के मंघन में वासवदत्ता की भूमिका में अभिनय करती निपुणिका राजा का हाथ रत्नावली के हाथ में देती हुई अपने को वासवदत्ता से एकाकार कर लेती है। किन्तु अपने

अभिनय में वह इतनी भावमग्न हो जाती है कि सम्मोहन के कारण पहले से ही दुर्बल उसकी शिराएँ शिथिल हो जाती हैं और उसका प्राणान्त हो जाता है। भट्टिनी 'कुररी की भाँति कातर चीत्कार के साथ' चिल्ला उठती है--"हाय, भट्ट, अभागिनी का अभिनय आज समाप्त हो गया। उसने प्रेम की दो दिशाओं को एकसूत्र कर दिया !"

11.2.2 नारी चेतना की अभिव्यक्ति

द्विवेदी जी ने बाणभट्ट की आत्मकथा में नारी विषयक भारतीय दृष्टि को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। ई. सन् की छठी शताब्दी तक भारतीय समाज में नारी की स्थिति भोग्य वस्तु के रूप में बन चुकी थी। स्त्रियों का अपहरण और उनकी खरीद फरोख्त सामान्य बात हो गयी थी। बाणभट्ट की आत्मकथा में भट्टिनी इसकी शिकार है। वह प्रतापी सम्राट् तुवर मिलिन्द की कन्या है। पर दस्यु उसका अपहरण कर लेते हैं और उसे हर्षवर्द्धन के एक सामन्त के हाथों बेच देते हैं। निपुणिका और बाणभट्ट के प्रयत्न से उसका उद्धार होता है। इस सामन्त के अन्तःपुर में अपहृता बालिकाओं की भरमार है। महामाया भैरवी भी एक अपहृता बालिका है, जिसका विवाह घूर्तों ने महाराज ग्रहवर्मा से करा दिया था। वह अन्तःपुर में रो रो कर दिन बिता रही है और अन्त में संन्यास लेकर मुक्त होती है। वह एक जनसभा को सम्बोधित करती हुई कहती है : "इस उत्तरापथ में लाख लाख निरीह बहुओं और बेटियों के अपहरण और विक्रय का व्यवसाय क्या नहीं चल रहा है?" (पृ.202) "मैं तुम्हारे देश की लाख लाख अवमानित, लाछित और अकारण दंडित बेटियों में से एक हूँ। कौन नहीं जानता कि इस घृणित व्यवसाय के प्रधान आश्रय सामन्तों और राजाओं के अन्तःपुर हैं? आपमें से किसे नहीं मालूम कि महाराजाधिराज की चामरधारिणियाँ और करकवाहिनियाँ इसी प्रकार भगायी हुई और खरीदी हुई कन्याएँ हैं !" (पृ.203) इसी प्रकार निपुणिका की व्यथा उसके इन प्रश्नों से प्रकट होती है, जिन्हें वह बाणभट्ट से पूछती है--' मेरी हीशपथ करके तुम सत्य सत्य कहो, मेरा कौन सा ऐसा पाप-चरित्र है जिसके कारण मैं निदरुण दुःख की भट्ठी में आजीवन जलती रही? क्या स्त्री होना ही मेरे सारे अनर्थों की जड़ नहीं है? " (पृ. 245)

इस पृष्ठभूमि में द्विवेदी जी ने नारी महिमा का जो रूप खड़ा किया है, वह अनूठा है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में एक भी ऐसा नारी पात्र नहीं है, जो अपने चरित्र से स्त्री की गरिमा को बढ़ाता न हो। भट्टिनी, निपुणिका, महामाया, सुचरिता आदि सभी प्रमुख नारी पात्र स्त्री का ऐसा आदर्श सामने रखते हैं, जो वंदनीय है। विभिन्न पात्रों के द्वारा नारी के सम्बन्ध में व्यक्त कराए गये विचार भी द्विवेदी जी के नारी विषयक दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं। महामाया भैरवी भट्टिनी से कहती हैं--'हाँ बेटा, नारीहीन तपस्या संसार की भद्दी भूल है। यह धर्मकर्म का विशाल आयोजन, सैन्यसंगठन और राज्य व्यवस्थापन सब फेन-बुदबुद की भाँति विलुप्त हो जाएँगे; क्योंकि नारी का इसमें सहयोग नहीं है। यह सारा ठाट-बाट संसार में केवल अशान्ति पैदा करेगा।' (पृ.156) महामाया 'नारी तत्त्व' की व्याख्या करती हैं--" जहाँ कहीं अपने आपको उत्सर्ग करने की, अपने आप को खपा देने की भावना प्रधान है, वहीं नारी है। जहाँ कहीं दुःखसुख की लाख लाख धाराओं में अपने को दलित द्राक्षा के समान निचोड़ कर दूसरे को तृप्त करने की भावना प्रबल है, वहीं 'नारी तत्त्व' है, या शास्त्रीय भाषा में कहना हो, तो 'शक्ति तत्त्व' है।" (पृ.156) बाणभट्ट प्रथम बार सुचरिता को देखकर अपने भाव व्यक्त करता है : "मुझे बार बार बराहमिहिर की याद आती रही और मैं उनकी सहृदयता पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहा। उन्होंने ठीक ही कहा है, स्त्रियाँ ही रत्नों को भूषित करती हैं, रत्न स्त्रियों को क्या भूषित करेंगे ! आज यदि बराहमिहिर यहाँ उपस्थित होते, तो और भी आगे बढ़कर कहते-- धर्म-कर्म, भक्ति-ज्ञान, शान्ति-सौमनस्य कुछ भी नारी का संस्पर्श पाये बिना मनोहर नहीं होते-- नारी-देह वह स्पर्शमणि है, जो प्रत्येक

ईट-पत्थर को सोना बना देती है।" (पृ.186) अवधूत अघोरभैरव महामाया से कहते हैं-- 'मैं सारे जीवन नारी की उपासना करता रहा हूँ। मेरी साधना अपूर्ण रह गयी है। तुम विशुद्ध नारी बन कर मेरा उद्धार करो--विशुद्ध नारी-त्रिपुरभैरवी।' (पृ.239) बाणभट्ट निपुणिका के प्रसंग में चिन्तन करता है-- "नारी से बढ़ कर अनमोल रत्न और क्या हो सकता है? पर उससे अधिक दुर्दशा किसकी हो रही है? मुझसे निपुणिका क्या आशा रखती है? अवधूतपाद की साधना इसलिए अधूरी है कि उन्हें विशुद्ध नारी का सहयोग नहीं मिला और निपुणिका की बलिदानाकांक्षा इसलिए अपूर्ण है कि उसे पुरुष का करावलम्ब नहीं मिला।" (पृ.246)

भट्टिनी के रूप में एक आदर्श परंपरागत नारी का रूप भी साकार हो उठा है। बाणभट्ट के शब्दों में, "लौट कर जब आया, तो भट्टिनी मेरे आहार का आयोजन कर रही थीं। उनकी आँखें इस समय प्रसन्न दिख रही थीं और शरीर में एक प्रकार का लाघव-भाव स्पष्ट ही लक्षित हो रहा था।" (पृ.60) जब बाणभट्ट विनयपूर्वक इसका विरोध करता है तो भट्टिनी उत्तर देती है: "मुझे इतना अधिकार मिलना चाहिए भट्ट, कि अपनी बुद्धि से निर्णय कर सकूँ कि कौन सा गौरव किसे मिलना चाहिए।" भट्टिनी के इस उत्तर में भारतीय नारी का अपने अधिकारों के प्रति सचेत होकर सोचने का संकेत मिलता है।

सेवा भावी सम्मोहन की क्लान्ति से रुग्ण बाणभट्ट की परिचर्या में भी भट्टिनी एक आदर्श भारतीय नारी की भूमिका निभाती है। बाणभट्ट के देर तक बाहर बैठने का निषेध करती हुई भट्टिनी कहती है-- 'भट्ट, दुर्बल शरीर लेकर रात भर बाहर बैठना तो उचित नहीं है।' वह उसे भीतर जाकर सोने का आदेश देकर चली जाती है। यहाँ भी नारी का भव्य वत्सल रूप प्रकट हुआ है।

द्विवेदी जी भी मानते हैं कि जो प्रेम लोकमंगल के भाव और कर्तव्यबोध से सम्पन्न नहीं होता, वह एकांगी और क्षणिक होता है। भट्टिनी का बाणभट्ट के प्रति प्रेम लोकमंगल, अपितु विश्वमंगल, की भावना से जुड़कर अत्यन्त मनोहर बन गया है। भट्टिनी की कामना है कि भारतवर्ष बार बार क्रूर और आततायी 'प्रत्यन्त दस्युओं' से पादाक्रान्त न हो, उनके द्वारा स्त्रियों और बच्चों का, ब्राह्मणों और श्रमणों का, वृद्धों और बालिकाओं का संहार न हो, मन्दिरों और विहारों का ध्वंस न हो, ग्राम और नगर जला कर भस्मीभूत न किए जाएँ। महामाया इस समस्या के समाधान के लिए जनजागरण का सन्देश देती हैं। भट्टिनी महामाया से सहमत है कि 'राजाओं और राजपुत्रों की ओर ताकते रहने से आर्यावर्त का उद्धार नहीं होगा।' पर उसकी दृष्टि में यह अर्ध सत्य है। वह एक ऐसे विश्व की कल्पना करती है कि जिसमें युद्ध हो ही नहीं। वह इस सत्य को सामने रखना चाहती है कि 'यवन' और भारतवासी दोनों ही मनुष्य हैं। महामाया जिन्हें यवन कह रही हैं, भट्टिनी की दृष्टि में वे भी 'मनुष्य' हैं, "भेद इतना ही है कि उनमें सामाजिक ऊँचनीच का ऐसा भेद नहीं है। जहाँ भारतवर्ष के समाज में एक सहस्र स्तर हैं वहाँ उनके समाज में कठिनाई से दो तीन होंगे।" (पृ. 271) वह बाणभट्ट से कहती है-- "तुम उनके दुर्दर्ष रूप को जानते हो, उनके कोमल हृदय को एकदम नहीं जानते। क्यों भट्ट, ऐसा क्या नहीं हो सकता कि ऊँची भारतीय साधना उन तक पहुँचायी जा सके और निकृष्ट सामाजिक जटिलता यहाँ से हटायी जा सके। जब तक ये दानो बातें साथ साथ नहीं हो जातीं तब तक शाश्वत शान्ति असम्भव है।" (पृ.271) वह बाणभट्ट से इसी 'पूर्ण सत्य' का प्रचार करने को कहती है। भट्टिनी को भारतीय भागवत धर्म में यह पूर्णता दिखाई देती है। वह बाणभट्ट से कहती है-- "तुम इस म्लेच्छ कही जाने वाली निर्दय जाति के चित्त में समवेदना का संचार कर सकते हो, उन्हें स्त्रियों का सम्मान करना सिखा सकते हो, बालकों को प्यार करना सिखा सकते हो।" (पृ. 271) वह एक गहरी पीड़ा के साथ कहती है-- "एक जाति दूसरी को म्लेच्छ समझती है, एक मनुष्य

दूसरे को नीच समझता है, इससे बढ़ कर अशान्ति का कारण और क्या हो सकता है भट्ट ! तुम्हीं ऐसे हो जो नरलोक से लेकर किन्नर लोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय, एक ही कर्णायित चित्त को हृदयंगम करा सकते हो।" (पृ. 272) आरम्भ में बाणभट्ट इस बात को पूरी तरह से समझ नहीं पाता, उसके मन में इसकी सफलता को लेकर संशय है। पर वह भट्टिनी के प्रति इस हद तक समर्पित है कि उसके अनुरोध को आदेश मानकर स्वीकार कर लेता है। भट्टिनी भी उसके प्रति अपना अनुराग, तनिक अधिक स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करती है: "तुम क्या समझते हो कि मैं रानी की मर्यादा पाने से सन्तुष्ट हो गयी हूँ? ना भट्ट, तुम्हारी इस पवित्र वाक् स्रोतस्विनी में स्नान करके ही मैं पवित्र हुई हूँ।" (पृ. 274) वह यहाँ तक कह जाती है कि 'हमारे तो सर्वस्व तुम्ही हो।' और अन्त में आर्यावर्त को बचाने के लिए, मनुष्य जाति को बचाने के लिए भट्टिनी और बाणभट्ट एक हो जाते हैं और इस उद्देश्य के निमित्त स्वयं को समर्पित कर देते हैं। व्यापक लोकमंगल की भावना में प्रेम की यह परिणति मानव आदर्श का जीवन्त रूप है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार धर्म का अर्थ आँख मूँदकर कर्तव्य पालन करना नहीं है। उन्होंने कंचुकी वाभ्रव्य के प्रसंग द्वारा इस बात का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण किया है। कंचुकी का काम अंतःपुर की कुलवधुओं की रक्षा करना है लेकिन दो बार उससे इस कर्तव्य का पालन नहीं होता। वह भट्टिनी से कहता है "प्रीत हूँ बेटी, आज मेरा परिताप धुल गया है। मौखरियों के अन्तःपुर की मानरक्षा न कर सकने का क्षोभ आज मेरे मन से दूर हो गया है। बीस वर्ष से मैंने कंचुक धारण किया है। इस लम्बी अवधि में केवल दो बार मुझे कर्तव्य से च्युत होने का अपराध स्वीकार करना पड़ा है। पर त्रिपुरभैरवी की कुछ ऐसी विचित्र माया रही है कि दोनो ही बार मेरे अपराधों से बृहत्तर जगत् को लाभ हुए हैं। भट्टिनी की घटना के पूर्व मौखरि राजा ग्रहवर्मा के अन्तःपुर से उसकी रानी महामाया संन्यास धारण कर निकल गयी थी और वाभ्रव्य ने उसे जाने की अनुमति दे दी थी। दोनो बार वह अपने धर्म के पालन में अक्षम रहा, पर इससे जगत् का कल्याण ही हुआ। भट्टिनी और महामाया की मुक्ति से ही भारतवर्ष की हूणों के आक्रमण से रक्षा हुई। दोनो के साथ ही घोर सामाजिक अन्याय हुआ था। दोनो अन्याय पीड़ित थीं। पर वाभ्रव्य को लगा था कि वह अपने धर्मपालन में अक्षम रहा है। पहली घटना के समय धूम्रेश्वरी मन्दिर के योगी ने उससे कहा था-- "जिस दिन तुझे मालूम हो जाएगा कि जिसे तू धर्म समझ रहा है वह अधर्म है और जिसे अधर्म समझ रहा है वह धर्म है, उस दिन तू त्रिपुरसुन्दरी का साक्षात्कार पा सकेगा।" (पृ. 291) वस्तुतः धर्म और अधर्म की बँधी लकीरों पर चलना धर्म नहीं है। वह धर्म का दिखावा है, ढोंग है। वाभ्रव्य भट्टिनी से गद्गद स्वर में कहता है-- "मैं आज स्पष्ट देख रहा हूँ कि जितने बँधे बँधाए नियम और आचार हैं, उनमें धर्म अँटता नहीं। वह नियमों से बड़ा है, आचारों से बड़ा है। मैं जिनको धर्म समझता रहा वे सब समय और सभी अवस्था में धर्म ही नहीं थे, जिन्हें अधर्म समझता रहा वे सभी समय और सभी अवस्था में अधर्म नहीं कहे जा सकते। योगी ने मुझे बताया था कि जिस दिन तू धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म समझ लेगा उसी दिन त्रिपुरसुन्दरी का साक्षात्कार पा सकेगा।" (पृ. 294)

भारतीय दृष्टि में 'सत्य' का स्वरूप क्या है, इसका स्पष्टीकरण भी एक स्थान पर, प्रसंगवश, किया गया है। कुमार कृष्णवर्द्धन भट्टिनी और निपुणिका को राजकोप से बचाने के लिए 'असत्य' को साधन के रूप में अपनाते हैं। इसका स्पष्टीकरण करते हुए वे बाणभट्ट से कहते हैं-- "इतिहास साक्षी है कि देखी-सुनी बात को ज्यों का त्यों कह देना या मान लेना सत्य नहीं है। सत्य वह है जिससे लोक का आत्यन्तिक कल्याण होता है। ऊपर से वह जैसा भी झूठ क्यों न दिखाई देता हो, वही सत्य है। लोक कल्याण प्रधान वस्तु है। वह जिससे सघता हो, वही सत्य है। आचार्य आर्यदेव ने सबसे बड़े सत्य को भी सर्वत्र बोलने का निषेध किया है। औषध के समान अनुचित स्थान पर प्रयुक्त होने पर सत्य भी विष हो जाता है।" (पृ. 106) ये

बातें महाभारत और चतुःशतक में ज्यों की त्यों कही गयी है। वस्तुतः यह भारतीय चिन्तन का सार है।

11.2.3 संस्कृति और समन्वयात्मकता

बाणभट्ट की आत्मकथा में भारतीय संस्कृति के स्वरूप की चर्चा भी अनेक प्रसंगों में आयी है। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता उसकी समन्वयात्मकता मानी जाती है। वैदिक काल से लेकर आज तक भारतीय संस्कृति अनेक समान और परस्पर विरोधी विचारों के संयोग और घात प्रतिघात से अपना रूप ग्रहण करती रही है। ब्राह्मण और श्रमण संस्कृतियाँ तो भारत में बहुत प्राचीन काल से साथ साथ चलती आयी हैं। दोनों में विरोध कम नहीं रहा है, पर उनमें समन्वय भी होता रहा है। बौद्ध और जैन धर्म के अनेक तत्व ब्राह्मण संस्कृति ने अपनाए जरूर हैं, लेकिन समानता, स्वतंत्रता और न्याय, जो कि बौद्ध और जैन धर्म के मूलभूत तत्व हैं, हिंदू धर्म और ब्राह्मण संस्कृति ने कभी भी नहीं अपनाए। आज भी स्वतंत्र भारत में जन्म के आधार पर ही इन्सान की जाति का निर्धारण होता है और उसके आधार पर समाज में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थिति भी तय होती है। हिंदू धर्म जिस असमानता, भेदभाव और जाति व्यवस्था में विश्वास करता है, उससे समन्वयात्मक संस्कृति का निर्माण होने में आज भी बाधाएं उत्पन्न हो रही हैं। समन्वय ही भारतीय संस्कृति की धरोहर रही है और जहाँ कहीं इस समन्वयात्मक विचारों में दरार आई है, जनजीवन को दुःखों और संकटों का सामना करना पड़ा है। बाणभट्ट की आत्मकथा में भारतीय संस्कृति के इस केन्द्रीय पक्ष को महत्व दिया गया है।

पाँचवी-छठी शताब्दी में बौद्ध धर्म से ही वाममार्गी साधनाएँ भी विकसित हो गयी थीं। सौगत तन्त्र उन्हीं में से एक था जो नैरात्म्य भावना की साधना पर बल देता था। इस साधना में 'तुम और मैं', 'स्त्री और पुरुष', 'बुद्ध और बद्ध' का भेद त्यागने तथा अपने प्रिय से प्रिय व्यक्ति को भी त्याग सकने के साहस की आवश्यकता होती थी। बाणभट्ट की आत्मकथा में विरतिवज्र (अमितकान्ति) इस साधना के योग्य सिद्ध नहीं होता, क्योंकि उसने अपनी पत्नी और असहाय माता को त्याग कर वैराग्य धारण किया है और उनके मोह-जाल को काटने में वह समर्थ नहीं है। अतः सौगत तन्त्र के साधक अमोघवज्र, जिनका वह शिष्य है, उसे कौलाचार्य अघोर भैरव के पास भेजते हैं। अवधूत अघोर भैरव विरतिवज्र को कौल मार्ग के योग्य तो समझते हैं, पर इस मार्ग में शक्ति (स्त्री) के बिना साधना नहीं हो सकती। विरतिवज्र की पत्नी सुचरिता उनके साथ नहीं है। उपन्यास में कौल साधना का पर्याप्त विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। यह साधना भी गुह्य है, जिसमें मदिरा सेवन, मन्त्रजाप, शवसाधना, शक्ति साधना आदि की प्रधानता है। पर इस साधना मार्ग के गुरु, अघोर भैरव, के चरित्र में एक महान सन्त के सारे गुण विद्यमान हैं। वे सच्चे साधक हैं। उनमें मनुष्य के प्रति अगाध करुणा का भाव है। ब्राह्मण धर्म और वैदिक अनुष्ठानों में उनका विश्वास नहीं है, क्योंकि उनमें पाखंड की प्रधानता हो गयी है। अघोर भैरव इस पाखंड के विरोधी हैं। वे बाणभट्ट को उपदेशित करते हैं कि "डरना नहीं चाहिए। जिस पर विश्वास करना चाहिए, उस पर पूरा विश्वास करना चाहिए, चाहे परिणाम जो हो। जिसे मानना चाहिए, उसे अन्त तक मानना चाहिए।" (पृ.80) वे फिर कहते हैं--" देख रे, तेरे शास्त्र तुझे धोखा देते हैं। जो तेरे भीतर सत्य है, उसे दबाने को कहते हैं ; जो तेरे भीतर मोहन है, उसे भुलाने को कहते हैं ; जिसे तू पूजता है, उसे छोड़ने को कहते हैं।" (पृ.82) वे अमंगल से भयभीत बाणभट्ट से कहते हैं, " तू अमंगल को मंगल क्यों नहीं मान लेता?" वे उसे फिर समझाते हैं--" देख बाबा, भटकता न फिर। इस ब्रह्मांड का प्रत्येक अणु देवता है। देवता ने जिस रूप में तुझे सबसे अधिक मोहित किया है, उसी की पूजा कर।" (पृ.83) वे बाणभट्ट को मन्त्र देते हैं--" किसी से न डरना, गुरु से भी नहीं, मन्त्र से भी नहीं, लोक से भी नहीं, वेद से भी,

नहीं।" (85) अघोर भैरव का कहना है कि प्रवृत्तियों से डरना भी गलत है, उन्हें छिपाना भी ठीक नहीं और उनसे लज्जित होना बालिशता है। बाणभट्ट को उनका आदेश है कि 'त्रिभुवन मोहिनी ने तुझे जिस रूप में मोह लिया है उसी रूप की पूजा कर, वही तेरा देवता है।' विरतिवज्र को वे श्रीपर्वत के वैष्णव तान्त्रिक वेंकटेश भट्ट के पास भेजते हैं, जो पहले उड्डियानपीठ में सौगत तन्त्र की साधना करते थे और वहाँ से वे श्रीपर्वत पर चले गये थे। उन्होंने कई साधना-मार्गों के तत्त्वों को मिलाकर एक नये भक्ति मार्ग की साधना का विकास किया था। इस साधना में वासुदेव नारायण की पूजा, नाम कीर्तन और समर्पण भाव की प्रधानता है। वे नाम कीर्तन करते करते भावमग्न होकर नाच उठते हैं और संज्ञाहीन-तक हो जाते हैं। उनकी साधना समन्वय की साधना है, जिसमें शैव, शाक्त, वैष्णव आदि साधना मार्गों का मिश्रण है। इस उपासना के बारे में सुचरिता बताती है : "मैं भी नहीं समझती आर्य, परन्तु इतना जानती हूँ कि आज से तीन महीने पूर्व तक मैं अपने को पापलिप्त समझती थी। अब मेरे चित्त का यह विकल्प दूर हो गया है।" (पृ.191) उसके अनुसार "मानव देह केवल दंड भेगने के लिए नहीं बनी है, आर्य ! यह विद्याता की सर्वोत्तम सृष्टि है। यह नारायण का पवित्र मन्दिर है।" "समस्त गुण और अवगुण जब तक निर्विकार चित्त से नारायण को नहीं सौंप दिये जाते, तब तक वे भारमात्र हैं।"

ब्रह्मांड के प्रत्येक अणु को देवता समझने, किसी से भी न डरने, अमंगल को भी मंगल मान लेने, स्वाभाविक वृत्तियों का, मन के भीतर के सत्य का दमन न करने, अपने उपास्य पर अखंड विश्वास करने, उसके प्रति निष्काम भाव से समर्पित होने आदि के विचार भारतीय संस्कृति के प्रमुख स्वर हैं, जिनका बाणभट्ट की आत्मकथा में मनोहर प्रसंगों के माध्यम से प्रतिपादन किया गया है।

इस प्रकार बाणभट्ट की आत्मकथा में भारतीय जीवन दृष्टि के अनेक पक्षों का सुन्दर अंकन किया गया है।

11.3 बाणभट्ट की आत्मकथा : संरचना और शैली

उपन्यास एक कलावस्तु है। ललित कला के पाँच प्रमुख भेदों में एक साहित्य कला भी है और उपन्यास साहित्य की ही एक विधा है। उपन्यास भी, साहित्य की ही तरह, शब्दों की कला है। उपन्यास एक ऐसी कला है जिसमें उपन्यासकार की संवेदना, उसके अनुभव और विचार, शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। उपन्यासकार के द्वारा प्रयुक्त शब्द पाठक के मानस में एक रचना संसार का निर्माण करते हैं। वह रचना संसार पाठक के मन में ही निर्मित होता है। उपन्यास पढ़ते समय आप अनुभव करते होंगे कि जैसे-जैसे आप शब्द, वाक्य, पैराग्राफ और पृष्ठ दर पृष्ठ पढ़ते जाते हैं आपके मन में एक रचना संसार भी निर्मित होता चलता है, और जब आप पूरी किताब पढ़ जाते हैं तब आपके मानस में एक पूरा कथा संसार रच जाता है। उस कथा संसार का, आपकी चेतना के बाहर, कोई अस्तित्व नहीं होता। फिर भी आप अनुभव करते होंगे कि, अगर वही नहीं, तो एक वैसा ही संसार आपके आसपास, चारों ओर, अवश्य विद्यमान है। यही उपन्यास की कलावस्तु के रूप में पहचान है।

बाणभट्ट की आत्मकथा की अगली समस्या कथा संसार की प्रस्तुति की प्रविधि से सम्बद्ध है। प्रत्येक उपन्यासकार के सामने एक चुनौती भरा प्रश्न यह होता है कि वह अपने कथा संसार को किस अवलोकन बिन्दु से प्रस्तुत करे। ऐतिहासिक उपन्यास की पूर्वप्रचलित प्रविधि किस्सागोई की है, पर द्विवेदी जी ने इसे नहीं चुना है। किस्सागोई की प्रविधि में किस्सागो की वर्तमानता, सर्वज्ञता, स्वेच्छाचारिता आदि के कारण एक तरह का सन्देह या अविश्वसनीयता का वातावरण बना रहता है। पर जब कथा का कोई पात्र ही किस्सागो की भूमिका ग्रहण कर लेता है और

आत्मकथा के रूप में कहानी प्रस्तुत करता है तो उसमें प्रामाणिकता-बोध की मात्रा बढ़ जाती है। यद्यपि प्रबुद्ध पाठक यह जानता है कि कथा कहने वाला अन्ततः उपन्यासकार ही है पर केन्द्रीय पात्र के माध्यम से कथा की प्राप्ति होने से उसकी विश्वसनीयता बढ़ जाती है। यह अप्रत्यक्ष रूप में कथा प्रस्तुति का एक चरण है। पर द्विवेदी जी इतने से ही सन्तोष नहीं करते। उपन्यास के 'कथामुख' में पाठक को बताया जाता है कि शान्तिनिकेतन में आठ वर्षों तक रहने वाली आस्ट्रियावासी मिस कैथराइन व्योमकेश शास्त्री को (जो द्विवेदी जी का ही छद्म नाम है) एक पांडुलिपि देती हैं जो कथित रूप से बाणभट्ट की 'आत्मकथा' है। पर वस्तुतः व्योमकेश शास्त्री को भ्रम हुआ है, जिसे मिस कैथराइन अपने पत्र द्वारा दूर करती हैं। वह, दरअसल, एक कल्पित कथा है। मिस कैथराइन के अनुसार "बाणभट्ट की आत्मा शोणनद के प्रत्येक बालुका कण में वर्तमान है।" उसी 'आत्मा की आवाज' को स्वयं मिस कैथराइन ने शब्दबद्ध किया है। वे अपने उसी पत्र में कहती हैं : " 'बाणभट्ट केवल भारत में ही नहीं होते, इस नर लोक से किन्नर लोक तक एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त है।" वस्तुतः बाणभट्ट की भट्टिनी मिस कैथराइन ही हैं। पता नहीं उनका 'बाणभट्ट' कौन है? व्योमकेश शास्त्री ने ठीक ही अनुमान किया है कि 'दीदी' ने अपने उसी कवि प्रेमी की आँखों से अपने को देखने का प्रयत्न किया है। यह एक नया प्रयोग है। अपने प्रेमी की आँखों से खुद को देखने का प्रयोग नया और चुनौती पूर्ण तो है ही। व्योमकेश शास्त्री के अनुसार " काव्य की और धर्म साधना की दुनिया में जो कल्पना थी उसे दीदी ने अपने जीवन में सत्य करके दिखा दिया।" (पृ.309)

इस प्रसंग में एक मौलिक प्रश्न यह भी उठता है कि क्या यह प्रेम संवेदना स्वयं द्विवेदी जी की ही नहीं है? वस्तुतः यह प्रेमानुभूति है तो स्वयं उपन्यासकार की ही पर उसने इसे मिस कैथराइन पर आरोपित कर दिया है। मनुष्य का हृदय बड़ा रहस्यमय और उसकी संवेदना बड़ी जटिल होती है। बाणभट्ट की 'आत्मकथा' इसका प्रमाण है।

'आत्मकथा' का आरम्भ संस्कृत के एक श्लोक से होता है। चूँकि 'आत्मकथा' बाणभट्ट जैसे महान् संस्कृत रचनाकार की है, अतः इसका कलागत औचित्य है। किन्तु जब बाणभट्ट अपनी 'कहानी' कहने लगता है तो उसकी भाषा बहुत सरल और कथन-शैली पाठक से गहरी आत्मीयता पैदा करने वाली हो जाती है। उपन्यास की आरम्भिक पंक्तियाँ हैं : यद्यपि बाणभट्ट नाम से ही मेरी प्रसिद्धि है ; पर यह मेरा वास्तविक नाम नहीं है। इस नाम का इतिहास लोग न जानते, तो अच्छा था। मैंने प्रयत्नपूर्वक इस इतिहास से लोगों को अनभिज्ञ रखना चाहा है ; पर नाना कारणों से अब मैं उस इतिहास को अधिक नहीं छिपा सकता। मेरी लज्जा का प्रधान कारण यह है कि मेरा जन्म जिस प्रख्यात वात्स्यायन वंश में हुआ है, उसके धवलकीर्ति-तट पर यह कहानी एक कलंक है। मेरे पितृ-पितामहों के गृह वेदाङ्ग याधियों से भरे रहते थे। उनके घर की शुक-सारिकाएँ भी विशुद्ध मन्त्रोच्चारण कर लेती थीं, और यद्यपि लोगों को यह बात अतिशयोक्ति जैचगी, परन्तु यह सत्य है कि मेरे पूर्वजों के विद्यार्थी उनकी शुक-सारिकाओं से डरते रहते थे। वे पद पद पर उनके अशुद्ध पाठों को सुधार दिया करती थीं।" (पृ.11) यह भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों से निर्मित है, पर वाक्य सरल और छोटे छोटे हैं। इस पूरे उद्धरण में संयुक्त और मिश्र वाक्यों की संख्या एक-दो से ज्यादा नहीं है। यह सही है कि कथा कहते कहते बाणभट्ट का कवि रूप प्रायः उच्छ्वसित हो उठता है, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार बरबस अपनी छटा दिखाने लगते हैं पर कहानी की प्रवहमानता और बोधगम्यता में कोई बाधा नहीं पड़ती। उदाहरण के लिए यह अंश देखा जा सकता है : मेरे पिता ग्यारह भाई थे। मैंने उनमें सबको नहीं देखा था। मेरे एक चचेरे भाई का नाम उडुपति था। उग्र में मुझसे बहुत बड़े थे, पर मेरे साथ उनका व्यवहार समवयस्कों के समान ही था। वे अपने युग के प्रसिद्ध तार्किक थे। उन्होंने ही वसुभूति नामक बौद्ध भिक्षु को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। (पृ.12) कथा के बीच में भोजपुरी

शब्दों और मुहावरों को टपका कर द्विवेदी जी भाषा को अद्भुत रूप से जीवन्त बना देते हैं। बाणभट्ट का जन्मस्थान तो भोजपुरी क्षेत्र में था ही। उदाहरण द्रष्टव्य है : मैं जब घर से निकल भागा था तो अपने साथ गाँव के अन्य छोकरों को भी फोड़ ले गया था। वे सब अन्त तक मेरे साथ नहीं रहे, तो भी मैं गाँव में बदनाम तो हो ही गया था। मगध की बोली में 'बंड' पूँछ कटे बैल को कहते हैं। वहाँ यह कहावत मशहूर है कि 'बंड' आप आप गये साथ में नौ हाथ का पगहा भी लेते गये। सो लोग मुझे 'बंड' कहने लगे। (पृ.12)

पर ज्योंही कथा स्थगित होती है, किसी बिन्दु पर ठहरती है और किसी वर्णन का प्रसंग उपस्थित होता है कविप्रवर बाणभट्ट की कल्पना, अलंकृत शैली और ध्वनिमूलक शब्दयोजना का घटाटोप उपस्थित हो जाता है। निम्नलिखित उद्धरण से इसकी पुष्टि होती है : जब मैं नगर में पहुँचा, तो बड़ी धूमधाम देखी। कूर्मपृष्ठ के समान उन्नतोदर राजमार्ग पर एक बड़ा भारी जुलूस चला जा रहा था। उसमें स्त्रियों की संख्या ही अधिक थी। राजबहुएँ शिविकाओं पर आरूढ़ थीं। साथ साथ चलने वाली परिचारिकाओं के चरणविघटनजनित नूपुरों के क्वणन से दिगन्त शब्दायमान हो उठा था। वेगपूर्वक भुजलताओं के उत्तोलन के कारण मणिजड़ित चूड़ियाँ चंचल हो उठी थीं। उनकी ऊपर उठी हथेलियों को देखने से ऐसा लगता था, मानो आकाशगंगा में खिली हुई कमलिनियाँ हवा के झोकों से विलुलित होकर नीचे उतर आयी हों। उनकी चंचल हार-लताएँ जोर जोर से हिलती हुई उनके वक्ष भाग से टकरा रही थीं, खुली हुई केशराशि सिन्दूर-बिन्दु पर अटक जाती थी।

उपन्यास में ऐसे स्थल भी हैं जहाँ प्रकृति वर्णन अत्यधिक काव्यात्मक और कदाचित् बोझिल भी हो गया है। यद्यपि बाणभट्ट की काव्यशैली को देखते हुए इसे असंगत नहीं माना जा सकता, पर संस्कृत न जानने वाले पाठकों के लिए यह किंचित् अबोधगम्य तो है ही। एक उदाहरण देखने लायक है : देखते देखते चन्द्रमा पद्म मधु से रँगे हुए वृद्ध कलहंस की भाँति आकाशगंगा के पुलिन से उदास भाव से पश्चिम जलधि के तट पर उतर गया। समस्त दिङ् मंडल वृद्ध रंकुमृग की रोमराजि के समान पांडुर हो उठा। हाथी के रक्त से रंजित सिंह के सटाभार की भाँति किंवा लोहित वर्ण लाक्षारस के सूत्र के समान सूर्यकिरणों आकाशरूपी वनभूमि के नक्षत्ररूपी फूलों को इस प्रकार झाड़ देने लगीं, मानो वे पद्मरागमणि की शलाकाओं से बनी हुई झाड़ू हों। (पृ.42)

एक और उद्धरण है : विकसित मंजरियों के सौरभ से स्वयं आकृष्ट भ्रमरावली ने आम के वृक्षों को छा लिया था, पुष्प-धूलि के केसर-चूर्ण सघन भाव से वर्षित होकर वनभूमि को पीत बालुकामय पुलिन के रूप में परिणत कर रहे थे; पुष्प मधु के पान से आमत्त भ्रमरियाँ विह्वल भाव से लतारूप प्रेखा-दोला पर झूला झूल रही थीं ; मत्स कोकिल लवली के विकसित पल्लवों के अन्तराल में लुक्कायित होकर पुष्पमधु निकाल रहे थे और इसीलिए उन पेड़ों के नीचे मधुवृष्टि सी हो रही थी; किसी किसी वृक्ष और लता से जीर्ण पुष्प गिर रहे थे और भ्रमर-भार से जर्जरित उनके गर्भकेसरों से लतामंडप मनोरम हो उठे थे (पृ.56)

यह परम्परागत कविता की भाषा है। 'झाड़', 'झाड़ू', 'झूला' जैसे तद्भव शब्द तत्सम शब्दों के बीच आकर भाषा की सहजता के धरातल पर लाने का प्रयास करते हैं, पर यह भाषा, जो उपन्यास में बार बार सामने आती है, सामान्य पाठक के सामने समझ का संकट तो पैदा करती ही है।

इस प्रकार बारी बारी से कथा-वर्णन की सरल शैली और प्रकृति या नारी-सौन्दर्य वर्णन की अलंकृत शैली सामने आती है, जिसका सहृदय पाठक के चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सारा उपन्यास इसी प्रकार के वर्णनों से भरा पड़ा है। बीच-बीच में पाठक बाणभट्ट के

मानस में प्रवेश करने का अवसर भी पाता है। इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक क्षणों की भाषा स्वाभाविक और अलंकार-रहित है। उदाहरणार्थ: मेरे मन में आज विचित्र उमंग थी। आज मानो मेरा सारा कलुष धुल गया था और मेरा मन तथा शरीर लघु-भार हो गये थे। मैं अब निश्चय कर चुका था कि अपनी लम्पटता की बदनामी को हमेशा के लिए धो दूँगा। (पृ.16)

जहाँ विभिन्न प्रकार के भावों, विशेषकर प्रेम और भक्ति, के प्रसंग उपस्थित होते हैं वहाँ द्विवेदी जी की भाषा अद्भुत रूप से सर्जनात्मक हो जाती है; ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि बाणभट्ट का ही उनके शरीर में प्रवेश हो गया हो। इस प्रकार के भावावेग से युक्त प्रसंग उपन्यास में भरे पड़े हैं और भाषा उनका साथ देने में कहीं चूकती नहीं दिखाई देती। विपत्ति की मारी, पान बेचती निउनिया (निपुणिका) का चित्रण उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है : वह एक पान की दूकान पर बैठी थी। ऐसा लगता था कि वह पान कम बेच रही थी मुस्कान ज्यादा। मुझे अपनी पहचानने की शक्ति का गर्व था। मैं हँसी वाली रुलाई और रुलाई वाली हँसी पहचानने में अपने को सिद्धहस्त समझता था, पर यह हँसी एक विचित्र प्रकार की थी। उसमें आकर्षण था, पर आसक्ति नहीं थी, ममता थी, पर मोह नहीं था। (पृ.17).... वह पान लगा रही थी, पर यह अनाड़ी आदमी भी समझ सकता था कि उसके चित्त में कोई भयंकर उथल पुथल चल रही थी। बहुत दिनों के बाद पान पर फिरती हुई निपुणिका की शिथिल उँगलियों को देख कर मुझे एक अभूतपूर्व आह्लाद हो रहा था। निपुणिका के अधरों पर मुस्कान थी और आँखों में पानी। वह भी चुप थी। पान का एक बीड़ा एक घटी में लग सका। तब उसने मेरी ओर ताका। आँसू रुक न सके। वे झरते रहे, झरते रहे। मैं निर्वाक, निश्चल देखता रहा। अश्रु फिर भी झरते रहे।

परस्परविरोधी भावों की सटीक पहचान और उन्हें अभिव्यक्त करने वाली यह भाषा असाधारण है। इसी प्रकार महावाराह की पूजा में भावमग्न निपुणिका और उस भक्तिभाव में स्वयं भी अवश भाव से बहते बाणभट्ट की चित्तदशा का अंकन इन पंक्तियों में देखा जा सकता है : वह कुशासन पर बैठ गयी और महावाराह के सामने रुँधे गले से एक स्तोत्र-पाठ करने लगी। उसकी आँखों में निरन्तर आँसू झरते रहे। वक्षःस्थल पर का वासन्ती उत्तरीय इस अश्रुधारा में भीग गया। मैं यह दृश्य एकटक देखता रहा। निपुणिका धन्य है, महावाराह धन्य हैं, तुलसी धन्य हैं, और मैं अभागा बाण इन तीनों को देख रहा हूँ, सो धन्य ही हूँ। मुझे एक बार अपने गर्व की तुच्छता पर पश्चात्ताप हुआ। किसे आश्रय देने की बात मैं कह रहा था? निपुणिका को जो आश्रय मिला है, उसकी तुलना में मेरा आश्रय कितना तुच्छ, कितना नगण्य और कितना अकिंचन है। मेरे पुरुषत्व का गर्व, कौलीन्य का गर्व और पांडित्य का गर्व क्षण भर में भरभरा कर गिर गये। (पृ. 24)

‘छोटे राजकुल’ के अन्तःपुर में वन्दिनी भट्टिनी के तपःपूत, भक्तिभाव से आप्लावित सौन्दर्य का वर्णन भी अपनी मनोरमता में अद्वितीय है : इसी समय राजकन्या ने वीणा बजाना शुरू किया। धीरे धीरे वह अत्यन्त तन्मय हो गयी। मैंने इस बार स्वाभाविक संकोच छोड़ कर इस कमनीयता की मूर्ति की ओर देखा। उसको देख कर अत्यन्त पतित व्यक्ति के हृदय में भी भक्ति उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकती। उसके सारे शरीर से स्वच्छ कान्ति प्रवाहित हो रही थी। अत्यन्त धवल प्रभापुंज से उसका शरीर एक प्रकार से ढँका हुआ-सा ही जान पड़ता था, मानो वह स्फटिक गृह में आबद्ध हो, या दुग्ध सलिल में निमग्न हो, या विमल चीनांशुक से समावृत हो, या दर्पण में प्रतिबिम्बित हो, या शरदकालीन मेघपुंज में अन्तरित चन्द्रकला हो। उसकी धवल कान्ति दर्शक के नयन मार्ग से हृदय में प्रविष्ट होकर समस्त कलुष को द्रवित कर देती थी, मानो स्वर्मन्दाकिनी की धवल धारा समस्त कलुष कालिमा का क्षालन कर रही हो। (पृ.35)

एकादश उच्छ्वास में बाणभट्ट के सम्मोहन-ग्रस्त होने और उसके बाद की स्थिति का अंकन है। यद्यपि भाषा बाणभट्ट की अलंकरण प्रधान भाषा ही है, पर उसमें उसकी अपनी मनोदशा को व्यक्त करने की अद्भुत क्षमता है : मेरा सारा शरीर एक प्रकार की अवश जड़िमा से भाराक्रान्त हो रहा था। तीन दिन और तीन रात तक मैं संज्ञाहीन पड़ा रहा, और जब चैतन्य लाभ हुआ, तब भी स्वप्नावेश की मार्यो मेरे सारे अस्तित्व को अभिभूत किये रही। मैं मानो एक तरल मरुकान्तार में वृत्तच्युत तूल-खंड की भाँति उतरा रहा था। (पृ. 152)

भट्टिनी के कई दिनों तक जग कर अस्वस्थ बाणभट्ट की सेवा करते रहने के कारण उसकी थकी हुई मनःस्थिति का वर्णन भी वैसी ही समर्थ भाषा में किया गया है : सामने भट्टिनी बैठी थी। उनकी बड़ी बड़ी आँखें घँस गयी थीं, मुखमंडल पांडुर हो गया था और कपोलतल फीके पड़ गये थे। निश्चय ही कई दिनों से उन्हें नींद नहीं आयी थी। उनकी जागरणखिन्न लाल आँखें धूलिलुठित पलाश पुष्प की भाँति, आतप-म्लान, बन्धुजीव कुसुम के समान और पिंजरबद्ध खंजन शावक की भाँति दर्शक को व्यथित, खिन्न और उत्सुक बना देती थीं। भट्टिनी मेरे पैरों की ओर बैठी हुई निनिमेष भाव से मेरी ही ओर देख रही थीं। उस दृष्टि में कारुण्य धारा उमड़ रही थी। मैंने स्पष्ट ही लक्ष्य किया कि मेरी आँखों के खुलते ही भट्टिनी का रोम रोम उल्लसित हो गया, जैसे शोभा के समुद्र में अचानक ज्वार आ गया हो। (पृ. 152-53)

इसके बाद भट्टिनी की लज्जा और जड़िमा की मनःस्थिति का वर्णन है, जो उतना ही सशक्त और सहज-सटीक है : परन्तु भट्टिनी इसके लिए तैयार नहीं थीं। उन्हें शीघ्र ही मेरी संज्ञा के लौट आने की शायद आशा नहीं थी। वे कुछ झेंप सी गयीं। उनके पारिजात पल्लवों के समान सुकुमार-मनोहर हाथ तेजी से उत्तरीय की खोज में दौड़ पड़े। एक निमेष बीतते न बीतते भट्टिनी का कपोल-कर्बुर अंशुकान्त (आँचल) सीमान्त रेखा पर आ गया, मानो विद्युल्लता ने चन्द्रमा पर नील मेघपटल का आवरण डाल दिया हो, मानो मृणाल-नाल ने कमल पुष्प को पत्तों से ढँक दिया हो..... मुझे निषेध करने के लिए उन्होंने आयासपूर्वक अपने कोमल करतलों से मुझे दबाया। उनके मुख से केवल एक ही शब्द निकल सका--'नहीं।' उनका गला रँधा हुआ था, दृष्टि कातर थी और करतल स्वेद-धारा से आर्द्र था। मुझमें तब भी उठने की शक्ति नहीं थी। मैंने आँखें मूँद लीं और भट्टिनी की स्नेह-मेदुर मुखश्री का ध्यान करने लगा। कहाँ भटक रहे हैं इस मर्त्यलोक के वातुल कवि? लक्ष्मी क्या स्वर्ग में रहती है? इस पृथ्वी पर ही तो वे अवतीर्ण हुई हैं। भट्टिनी से बढ़कर किस श्रीशालिनी की कल्पना हो सकी है? (पृ. 153)

कहना न होगा कि इस वर्णन में काव्य देह धारण कर उपस्थित हो गया है। और, यह कोई अकेला उदाहरण नहीं है। जहाँ भी उपन्यासकार को भट्टिनी के भावों के अंकन का अवसर मिलता है, उसकी भाषा अपनी शक्ति के शिखर पर पहुँच जाती है।

11.4 संवाद योजना

आत्मकथा के बीच बीच में संवादों की योजना भी अत्यन्त कलात्मक रूप में की गयी है। इन वार्तालापों में बाणभट्ट के साथ कोई दूसरा पात्र शामिल होता है। इन संवादों की भाषा अत्यन्त सहज, विदग्धतापूर्ण, संवादरत पात्रों के मनोभावों की व्यंजक, संकेतपूर्ण और कौतूहलोत्पादक है। ये वार्तालाप केवल पात्रों की मनोदशाओं को ही व्यक्त नहीं करते वरन् कथा को आगे बढ़ाने में भी योग देते हैं। एक उदाहरण देखा जा सकता है :

‘निउनिया, कल सौभाग्य से मुझसे तेरी मुलाकात हो गयी थी।’

‘हाँ भट्ट !’

‘मैं सोचता हूँ कि कहीं तू अकेली ही भट्टिनी को लेकर इधर आयी होती, तो कितना कष्ट होता।’

‘सो तो होता ही।’

‘इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ उस समय उतना भी तो नहीं हो पाता !’

‘इतना तो हो जाता भट्ट !’

‘कौन करता भला?’

‘पुजारी !’

‘पुजारी? पर तू तो पुजारी से डरी हुई थी निउनिया !’

‘पुजारी जैसे मूर्ख रसिकों से डरती, तो निउनिया आज से छः वर्ष पहले ही मर गयी होती,

भट्ट !’

‘पर तू प्रत्यूष काल में डरी हुई जरूर थी।’

‘सो तो थी ही।’

‘तो तू किससे डरी थी भला?’

‘तुमसे !’

‘मुझसे?’

‘हाँ भट्ट, तुमसे !’

‘तो मुझसे क्यों डरी थी, निउनिया !’

‘क्या बताऊँ, भट्ट! मेरे जैसी स्त्री तुम्हारे जैसे पुरुष से क्यों डरती है, यह बात अगर आज तक तुम्हारी समझ में नहीं आयी तो अब नहीं आएगी।’ (पृ.58-59)

इस संवाद का सौन्दर्य अपने आप में अनूठा है। बाणभट्ट से संवाद करती निपुणिका की भाषा में सर्वत्र एक लीला और चुहल का भाव दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि वह बाणभट्ट से प्रेम भी करती है और उसके प्रति श्रद्धा भी रखती है। छह वर्षों के घोर प्रायश्चित्त से उसके प्रेम में एक ऐसी स्थिरता आ गयी है, जो डिगने वाली नहीं।

बाणभट्ट की आत्मकथा के अधिकतर संवादों में बाणभट्ट समान रूप से विद्यमान रहता है, पर अन्य पात्र बदलते रहते हैं। आत्मकथा की प्रविधि में कही गयी कथा में यही स्वाभाविक भी है। फिर भी बाणभट्ट की भाषा में एकरसता नहीं है। उसकी भाषा उसकी मनःस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित होती रहती है। जहाँ वह भट्टिनी से बात करता होता है, उसकी भाषा में श्रद्धा, कृतज्ञता और विह्वलता का आवेग होता है। निपुणिका से बात करते समय उसकी मनःस्थिति अभिभावक और वरिष्ठ सखा की होती है। पर जहाँ उसे किसी ऐसे व्यक्ति से बात करनी होती है, जो भट्टिनी का समुचित समादर नहीं करता, वहाँ उसकी भाषा में अद्भुत ओज, आत्मविश्वास, आत्मगौरव, भयहीनता, स्पष्टवादिता और उत्तेजना का भाव आ जाता है। एक ऐसा ही प्रसंग बाणभट्ट और कुमार कृष्णवर्धन के वार्तालाप का है। इस संवाद का एक ओजदृप्त अंश है : कुमार, साम्राज्य गर्व में अन्धे न बनो। स्थाण्वीश्वर ने राजलक्ष्मी का अपमान किया है। और, ब्राह्मण पर तुम्हारा कोप व्यर्थ है। वह न भिखारी होता है न सान्धिविग्रहिक। वह धर्म का व्यवस्थापक होता है। मैंने जो कुछ किया है, उससे न मैं लज्जित हूँ, न मेरा ब्राह्मणत्व कलुषित हुआ है। मैं देवपुत्र तुवरमिलिन्द की मर्यादा का पूर्ण जानकार हूँ और निर्भय भाव से फिर कहता हूँ कि स्थाण्वीश्वर के राजवंश ने अपने को पूज्य-पूजन के अयोग्य सिद्ध किया है। (पृ. 67)

बाणभट्ट और वृद्ध ब्राह्मण (पृ. 43) बाणभट्ट और भट्टिनी (पृ. 49, 61, 113-14), बाणभट्ट और सामनेर (पृ. 50), बाणभट्ट और अवधूत अघोर भैरव (पृ. 80) आदि के वार्तालापों में भी पात्रों के मानसिक भावों की ऐसी ही सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है। जहाँ वृद्ध ब्राह्मण की भाषा में काशीवासियों का स्वाभिमान और लीला भाव है, वहाँ भट्टिनी की भाषा में आभिजात्य के साथ-साथ स्त्रीसुलभ सौकुमार्य, संकोच और शालीनता है। भट्टिनी के मनोभावों के अंकन में बाणभट्ट के माध्यम से द्विवेदी जी ने अपने अद्भुत भाषा सामर्थ्य का परिचय दिया है। अघोर भैरव की वाणी में साधना की परिपक्वता, सन्त का सात्त्विक स्वभाव, अक्खड़ता और चुहल का भाव बड़े मनोरम रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

उपन्यास में कुछ संवाद ऐसे भी हैं जिनमें बाणभट्ट स्वयं तो शामिल नहीं है, पर ये संवाद उसके सामने होते हैं या वह उन्हें सोने का बहाना बना कर सुन रहा होता है। जो संवाद उसके सामने होते हैं, वे प्रायः छोटे होते हैं, पर उनका चुटीलापन और व्यंग्य मन को मोहे बिना नहीं रहता। एक प्रसंग में बाणभट्ट छद्मवेश में निपुणिका के साथ 'छोटे राजकुल' के अन्तःपुर में जा रहा है। उसके सामने निपुणिका और एक मदमत्त दासी के बीच जो वार्तालाप होता है, वह द्रष्टव्य है : " निपुणिका को अवसर मिल गया। बोली-- 'उसे न छेड़ मित्तिया, गाँव से नयी-नयी आयी है, अभी यहाँ की रीति नीति नहीं जानती।' मित्तिया जोर से हँस पड़ी। 'दो दिन में सीख जाओगी लली, न जाने कितनी आँखों पर नाचती फिरोगी !' इस संवाद में 'लली' शब्द का प्रयोग कितना लीलापूर्ण है, इसे कोई सहृदय ही समझ सकता है।

एक अक्षर वाले शब्द 'ना' में कितनी शक्ति भरी जा सकती है इसका उदाहरण है एक प्रसंग में भट्टिनी द्वारा उच्चरित यह शब्द। प्रसंग है, बाणभट्ट और निपुणिका के सम्मोहन-ग्रस्त होकर अस्वस्थ हो जाने पर महामाया द्वारा उनके उपचार के बाद अपने आश्रम जाने का। इस बीच भट्टिनी ने भैरवी महामाया को माँ के रूप में मोहबद्ध कर लिया है। महामाया इस मोह का त्याग कर अपने गुरु के पास जाना चाहती हैं। वे भट्टिनी से कहती हैं :
"....बिलकुल चिन्ता मत कर बिटिया, आज भट्ट की नाड़ियाँ स्वस्थ हैं, कलाएँ उदबुद्ध हैं, द्वार रुद्ध हैं अभी इसकी आँखें खुली जाती हैं। निपुणिका में अभी देर है। घबराती नहीं है न!
--छिः, ऐसा भी व्याकुल हुआ जाता है।

भट्टिनी ने केवल रुद्ध कंठ से कहा--'ना !' (पृ.154)

महामाया पुनः कहती हैं-- 'आज तो मुझे जाना होगा बेटी, अक्षय तृतीया में तो अब अधिक देर नहीं है। यहाँ तुझे कोई भय नहीं है। लोरिकदेव बड़ा धार्मिक सामन्त है। तुझे कोई कष्ट नहीं होगा। क्या कहती है, जाऊँ न ?'

भट्टिनी ने दृढ़ता के साथ संक्षेप में उत्तर दिया--'ना !' (पृ.155)

इस प्रसंग में दो बार 'ना' का प्रयोग हुआ है। पहले प्रयोग में आश्वस्ति का, विश्वास का भाव व्यक्त हुआ है, तो दूसरे में विश्वास, अधिकार, प्रेम, विवशता, अस्वीकार, हठ और शिश्रुता का जो मिलाजुला भाव है, उसे कोई सहृदय ही समझ सकता है। इसके बाद भट्टिनी के यह कहने पर कि 'मैं तप में विघ्न पैदा कर रही हूँ, माता ?' महामाया स्नेह के स्वर में कहती हैं-- 'ना रे, ना !' यह तीन अक्षरों का अस्वीकार भी भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से संवेदनपूर्ण है।

11.5 विशिष्ट प्रसंग निर्मिति

उपन्यास के रूप में बाणभट्ट की आत्मकथा की श्रेष्ठता का एक आधार उसमें निर्मित मार्मिक प्रसंग भी हैं। उपन्यास में दर्जनों ऐसे प्रसंग हैं, जो पाठक को अभिभूत कर देते हैं। ये प्रसंग कहीं वर्णन के रूप में हैं, कहीं दृश्य के रूप में, कहीं संवाद के रूप में हैं, कहीं सबके मिलेजुले रूप में। नमूने के रूप में उपन्यास के अन्तिम प्रसंग की तनिक विस्तार से व्याख्या की जा सकती है। प्रसंग रत्नावली नाटिका के अभिनय का है। इस नाटिका में वासवदत्ता अपने पति से उसकी प्रेमिका का मिलन करा देती है। निपुणिका वासवदत्ता का अभिनय कर रही है। वह बाणभट्ट से प्रेम करती है। उसे यह ज्ञात हो चुका है कि भट्टिनी का भी बाणभट्ट से अनुराग है। वह यह जान चुकी है कि बाणभट्ट उसके (निपुणिका के) प्रेम से भी उदासीन नहीं है। महामाया उसे यह भी बता चुकी हैं कि नारी की सफलता पुरुष को बाँधने में है, सार्थकता उसे मुक्त करने में। निपुणिका बाणभट्ट को अपने प्रेम से जीत कर सफलता प्राप्त कर चुकी है ; अब वह अपने जीवन को सार्थक करने का संकल्प करती है। वह 'सम्मोहन के प्रतिप्रसव की क्लान्ति' से, पहले से ही, अस्वस्थ है। इस अस्वस्थता की स्थिति में ही वह वासवदत्ता की भूमिका में उतरने का फैसला करती है। वह देखती है कि नाटिका में वासवदत्ता ने दो विरोधी दिशाओं में जाने वाले प्रेम को एकसूत्र कर दिया है। उसके अनुसार प्रेम एक, और अविभाज्य है। उसे केवल ईर्ष्या और असूया ही विभाजित करके छोटा कर देते हैं। वह अपने प्रेम को इस कसौटी पर खरा उतारने के लिए आत्म बलिदान का रास्ता चुनती है। आर्य वाभ्रव्य ने उससे कहा था, 'अपने को निःशेष भाव से दे देना ही वशीकरण है।' रत्नावली की वासवदत्ता में उसने वही वैशिष्ट्य देखा था। अतः वह अपना सर्वस्व, अपना जीवन ही, बाणभट्ट और भट्टिनी को दे देने का संकल्प करती है। वासवदत्ता की भूमिका में वह उन्माद बरसा देती है। उसके हर्ष, शोक और प्रेम के अभिनय में वास्तविकता सदेह उतर आती है। अन्तिम दृश्य में रत्नावली का हाथ राजा के हाथ में देते समय वह विचलित हो जाती है, सिहर जाती है। यहाँ वह केवल वासवदत्ता का अभिनय नहीं करती, बल्कि वासवदत्ता बन जाती है। उसके शरीर की एक एक शिरा शिथिल हो जाती है। भरत वाक्य समाप्त होते न होते वह धरती पर लोट जाती है और उसका प्राणान्त हो जाता है। उसका अभिनय सदा के लिए समाप्त हो जाता है। और बाणभट्ट अनुभव करता है कि 'अभिनय करके जिसे पाया था, अभिनय करके ही उसे खो दिया।'

पर द्विवेदी जी के प्रसंग-निर्माण की क्षमता इसके बाद सामने आती है। इस घटना से सभी अवसन्न हो जाते हैं। धावक जैसा मस्त और फक्कड़ कवि भी अभिभूत हो उठता है। जिस मुखमंडल से केवल मस्ती और आनन्द उच्छ्वसित होते रहते थे उस पर प्रथम बार विषाद का धूम छा जाता है। कान्यकुब्ज की नगरश्री चारुस्मिता जब निपुणिका की चिता को जानुपातपूर्वक प्रणाम करती है तो धावक की आँखों के रुद्ध अश्रु बह चलते हैं। बाणभट्ट को 'दिशाएँ शून्य मालूम पड़ती हैं, व्योममंडल कुलातचक्र की भाँति घूमता मालूम पड़ रहा है।' भट्टिनी की दशा और भी चिन्तनीय है। 'उसकी आँखों में अश्रु नहीं थे, अन्तर्वर्ती शोकाग्नि ने उन्हें एकदम सुखा दिया था। उनकी आँखें न जाने किस अनन्त की ओर उड़ जाने को व्याकुल थीं।' भट्टिनी की मनोदशा का चित्रण उपन्यासकार ने यहाँ जिस सुकुमार ढंग से किया है, वह अद्भुत है। उसे किन्हीं दूसरे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। निपुणिका के बलिदान की परिणति भी प्रेम के उदात्त रूप में होती है। सुचरिता बाणभट्ट से कहती है : " निपुणिका धन्य हो गयी आर्य, उसकी चिन्ता छोड़ो। परन्तु उसका बलिदान तभी सार्थक होगा जब तुम उसके दान का सम्मान करो। शोक मत करो। आर्य, भट्टिनी की सेवा करो, जो अनर्थ हो गया उसे नारायण का प्रसाद मानो। कुछ कल्याण ही होने वाला है। भट्टिनी कह रही थी कि नरलोक से लेकर किन्नरलोक तक एक ही रागात्मक हृदय के सन्धान का

काम बीच में ही रुक गया ! क्यों रुकेगा आर्य ? निपुणिका के जीवन का बलिदान तभी सार्थक होगा जब यह सन्धान सफल हो।" (पृ.302) और अन्त में इस प्रसंग का समापन बाणभट्ट और भट्टिनी के इस संकल्प से होता है कि वे मनुष्य जाति को महानाश से बचाने के लिए हिंस्र यवन जातियों में मानवीय संवेदना के विकास का प्रयास करेंगे।

बाणभट्ट की आत्मकथा में सुचरिता की कहानी का अपना महत्व है। हालांकि बाणभट्ट की 'आत्मकथा' से इसका कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं दीखता। उपन्यास के समग्र विजन से भी सुचरिता की कथा अनिवार्यतः जुड़ी हुई नहीं प्रतीत होती। पर सम्भवतः तत्कालीन भारतीय धर्मसाधना के एक विशिष्ट स्वरूप को प्रस्तुत करने के लिए द्विवेदी जी ने इस कथा का समावेश उपन्यास में किया है। पाँचवी-छठी शताब्दी में वाममार्गी साधनाओं का बड़ा जोर था, जिसका प्रभाव धर्म और सामाजिक संरचना पर पड़ रहा था। इन साधनाओं में शक्ति(स्त्री), मदिरा, तन्त्र-मन्त्र, सम्मोहन, वशीकरण, अभिचार, नरबलि आदि का प्राधान्य था। द्विवेदी जी ने अघोर भैरव के रूप में एक ऐसे तान्त्रिक साधक का चित्रण किया है, जो अपनी वाममार्गी, तान्त्रिक साधना के बावजूद हमारी श्रद्धा का पात्र बना रहता है। महामाया भैरवी तो लोकहित से जुड़ कर और भी प्रीतिकर चरित्र बन जाती हैं। पर वाममार्गी साधना सामान्य जनता के लिए सुगम और सहजग्राह्य नहीं थी। वह अपनी प्रकृति में ही लोकविरोधी थी। इसी पृष्ठभूमि में भक्ति मार्ग का विकास हुआ। द्विवेदी जी ने इस लोकमुखी साधना के विकास के अंकन के लिए सुचरिता और विरतिवज्र की कथा की रचना की है। अमितकान्ति नाम का एक युवक पहले सौगत अवधूत अमोघवज्र का शिष्य बनता है। उसका नया नामकरण होता है--विरतिवज्र। पर सौगत तन्त्र की नैरात्म्य भाव की साधना उससे नहीं होती। तब उसके गुरु उसे कौलाचार्य अघोर भैरव के पास भेजते हैं। किन्तु इस साधना के योग्य भी वह सिद्ध नहीं होता, क्योंकि वह 'शक्ति'-हीन है। कौल तन्त्र में 'शक्ति' स्त्री को कहते हैं। विरतिवज्र अपनी पत्नी को त्याग कर साधना के मार्ग में आया है। घटना-क्रम से अपनी पत्नी से तो उसका मिलन हो जाता है, पर अघोर भैरव उसे आचार्य वेंकटेश भट्ट के पास भेज देते हैं। आचार्य वेंकटेश भट्ट की साधना लोकमार्ग से जुड़ी हुई भक्तिमार्गी साधना है। विरतिवज्र और उसकी पत्नी सुचरिता दोनों उनके शिष्य बन कर एक बिलकुल नये ढंग की साधना का आरम्भ करते हैं जो सहज, लोकभावना के अनुकूल और परम्परागत भक्तिमार्ग से जुड़ी होने के कारण जनता में अत्यन्त लोकप्रिय हो जाती है। स्वयं अघोर भैरव का भी कहना है कि "प्रवृत्तियों से डरना भी गलत है, उन्हें छिपाना भी ठीक नहीं और उनसे लज्जित होना बालिशता है।" वे बाणभट्ट से कहते हैं--"त्रिभुवनमोहिनी ने जिस रूप में तुझे मोह लिया है, उसी रूप की पूजा कर। वही तेरा देवता है।" अघोर भैरव की शिष्या और 'शक्ति' भैरवी महामाया भट्टिनी से कहती हैं--"नारीहीन तपस्या संसार की भद्दी भूल है। यह धर्मकर्म का विशाल आयोजन, सैन्य संगठन और राज्य व्यवस्थापन सब फेन-बुदबुद की भाषति विलीन हो जाएँगे; क्योंकि नारी का इसमें सहयोग नहीं है।" (पृ.156) आचार्य वेंकटेश भट्ट की भक्ति साधना इस विचार से भी जुड़ी हुई है। सुचरिता एक स्थान पर बाणभट्ट से कहती है--"मानव देह केवल दंड भोगने के लिए नहीं बनी है, आर्य ! यह विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि है। यह नारायण का पवित्र मन्दिर है। यह प्रमाद है आर्य, कि यहृरीर नरक का साधन है। यह बैक्रुंठ है ! इसी को आश्रय करके नारायण अपनी आनन्द लीला प्रकट कर रहे हैं। आनन्द से ही यह भुवनमंडल उद्भासित है। आनन्द से ही विधाता ने सृष्टि उत्पन्न की है। आनन्द ही उसका उद्गम है, आनन्द ही उसका लक्ष्य है। लीला के सिवा इस सृष्टि का और क्या प्रयोजन हो सकता है, आर्य?" (पृ 191-92) सुचरिता बाणभट्ट के शब्दों में 'भक्तिमती देवी' है। उसकी प्रमुख चिन्ता है--"मन बड़ा पापी है, कब वह मनुष्य को नारायण के रूप में देखेगा।" वह अन्यत्र बाणभट्ट से कहती है--"समस्त गुण और अवगुण जब तक निर्विकार चित्त से नारायण को नहीं सौंप दिये जाते, तब तक वे भार मात्र हैं।" इस प्रकार से द्विवेदी जी ने तंत्र साधना की भक्तिमार्गीय लोकोन्मुखीप्रवृत्ति को रेखांकित किया है। उपासना के क्षेत्र

का अतिक्रमण कर ये साधक मानवीय कर्म की ओर प्रेरित करते हैं और मानवमान्य की एकता की अनिवार्यता का प्रतिपादन करते हैं। धर्म साधना के क्षेत्र में कल्पित पात्रों की भूमिका इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है, जो द्विवेदी जी की दृष्टि को स्पष्ट करती है।

11.6 सारांश

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एक विशिष्ट कलात्मक उपन्यास है। एक निश्चित दृष्टि के कारण उपन्यासकार ने वस्तु-संरचना और शिल्प-विन्यास का बड़ा ही कुशलतापूर्वक संयोजन किया है। कथ्य के महत्व को शिल्पगत विशिष्टता ने मार्मिकता से प्रस्तुत किया है। संक्षेप में कह सकते हैं कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' कथ्य और अभिव्यक्ति कौशल का उत्कृष्ट उपन्यास है।

समग्रता में बाणभट्ट की आत्मकथा एक श्रेष्ठ कलात्मक उपन्यास है। औपन्यासिक विजन से लेकर उसकी प्रस्तुति तक, सारा आयोजन, कुछ छोटी मोटी खामियों के बावजूद, अत्यंत भव्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। बाणभट्ट की आत्मकथा हिन्दी साहित्य की विशिष्ट रचना है, जिसने हिन्दी उपन्यास साहित्य को समृद्ध बनाया है।

11.7 प्रश्न

1. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एक ऐतिहासिक रचना है, क्या यह रचना समसामयिक समस्याओं, चिंताओं को भी अभिव्यक्ति देने में सफल हुई है?
2. महामाया भैरवी और भट्टिनी तत्कालीन हिंदू समाज में व्याप्त जातिभेद, स्तरभेद और सभी के शोषण का विरोध करके किस प्रकार के समाज स्थापना की परिकल्पना की थी। विस्तार से लिखिए।
3. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' जिस प्रकार तत्कालीन युगीन यथार्थ को उद्घाटित करती है, उसी प्रकार आज के वास्तविक धरातल को भी अभिव्यक्ति दे रही है। उदाहरण देकर विस्तार से लिखिए।
4. 'बाणभट्ट की आत्मकथा में नारी-चेतना की अभिव्यक्ति' पर लगभग 200 शब्दों में एक निबंध लिखिए।
5. क्या उपन्यास की संवाद योजना कथा को आगे बढ़ाने में सहयोग देती है? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

इकाई 12 बाणभट्ट की आत्मकथा का शिल्प

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 आत्मकथात्मकता

12.3 रोमांस के तत्व

12.4 इतिहास और कल्पना का सर्जनात्मक मिश्रण

12.5 सारांश

12.6 अभ्यास/प्रश्न

12.0 उद्देश्य

इकाई 11 में आपने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की जीवनदृष्टि और संरचना और शैलीगत विशेषताओं का परिचय प्राप्त कर लिया है। इस प्रक्रिया में उपन्यास की वस्तु-संरचना, प्रेम का स्वरूप, उसके सामाजिक-राष्ट्रीय निहितार्थ, इतिहास बोध के साथ-साथ समसामयिक सामाजिक यथार्थ, और स्वाधीनता आंदोलन के लिए उपन्यास में व्यक्त दिशा-संकेत आदि सभी महत्वपूर्ण बिंदुओं पर विचार किया गया है! अब आपके सामने प्रस्तुत है इकाई 12, इस इकाई में आप :

- 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में आत्मकथात्मकता के तत्व को समझ सकेंगे,
- उपन्यास में चित्रित रोमांस की स्थितियाँ और विशिष्टता से अवगत हो सकेंगे,
- इतिहास और कल्पना के सामंजस्य के द्वारा वर्तमान स्थिति की जटिलता को समझ सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास 'आत्मकथा पद्धति' पर लिखा है! हर्षकालीन भारतवर्ष के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिवेश से कथावस्तु का चयन किया है! इसके कुछ महत्वपूर्ण पात्र ऐतिहासिक हैं, जैसे बाण, हर्षवर्धन, कृष्णवर्धन, शीलभद्र, राज्यश्री और जयन्त भट्ट। इस उपन्यास में चित्रित प्रसंग, शहर, नगर सभी ऐतिहासिक हैं, लेकिन पात्रों के आस-पास घटने वाली घटनाएँ और उनके कार्य काल्पनिक हैं। उपन्यास का आधार संस्कृत के विद्वान बाणभट्ट की जीवन कथा है। द्विवेदी जी ने बाणभट्ट की जीवन-कथा को तत्कालीन युग के विभिन्न घटनाओं के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया है। द्विवेदी जी ने पात्रों के अनुरूप उनसे संबंधित काल्पनिक घटनाओं की निर्मिति द्वारा ऐतिहासिक वातावरण का आभास निर्माण किया है! ऐतिहासिक कथावस्तु को आधार बनाकर वे सामाजिक विकास प्रक्रिया को वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषित करते हैं! समाजिक, सांस्कृतिक परंपराओं, रूढ़ि रीतियों, भेदभाव की नीतियों और मानव की प्रतिष्ठा को गिराने वाली जातिगतता की जड़ों को वे इतिहास के गर्भ से खोज निकालने की कोशिश करते हैं। आज के सामाजिक राजनीतिक संदर्भों को इतिहास की इन्हीं परंपराओं और संस्कारों के तहत तलाशते हैं। मानव समुदाय के विकास में अवरोध बनी इस जड़ परंपराओं को तोड़कर समानतामूलक समाज व्यवस्था को

बनाने का संकेत भी वे देते हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने प्रस्तुत आत्मकथा में बाण की जीवन कथा को प्रमुखता नहीं दी है, प्रमुख है युगीन संदर्भ और घटनाएँ। इसलिए इतिहास और कल्पना का सहारा लेना उन्हें आवश्यक लगा। कल्पित घटनाओं और अनुकूल पात्रों के निर्माण द्वारा तत्कालीन परिवेश को साकार करने का प्रयास किया है। इस इकाई में आप पढ़ेंगे कि जन-जीवन के यथार्थ चित्र को प्रस्तुत करने का प्रयास ही यह 'बाणभट्ट की आत्मकथा' है।

12.2 आत्मकथात्मकता

इस प्रसंग में पहला प्रश्न आत्मकथात्मकता पद के अर्थ को लेकर पैदा होता है। उपन्यास के शीर्षक में ही आत्मकथा पद प्रयुक्त हुआ है, जिसका प्रथम अर्थ यह होगा कि यह संस्कृत के महान् लेखक बाणभट्ट की 'आत्मकथा' है। 'आत्मकथा' वह विधा है जिसमें कोई व्यक्ति अपनी जीवन-कथा लिखता है। पर संस्कृत के विख्यात कथालेखक बाणभट्ट के प्रसंग में यह पद इसलिए निरर्थक है कि उस काल में संस्कृत साहित्य में 'आत्मकथा' लिखने का प्रचलन था ही नहीं। यदि यह किताब सचमुच ही बाणभट्ट की 'आत्मकथा' का अनुवाद होती, जैसा कि उसकी भूमिका और शीर्षक में कहा गया है, तो शोध की दृष्टि से यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि होती; संस्कृत साहित्य के इतिहास में एक नया अध्याय ही जुड़ जाता। पर वस्तुतः ऐसा है नहीं। यह किताब एक उपन्यास है, या स्वयं द्विवेदी जी के शब्दों में एक 'गप्प' है, जिसे विश्वसनीय बनाने के लिए 'आत्मकथा' कह दिया गया है। 'झूठ' तो यह है ही, पर 'गप्प' झूठ नहीं तो क्या होगा! हाँ, गप्प बिलकुल सच लगे, इसका प्रयास तो 'गप्पकार' करता ही है। द्विवेदी जी ने ऐसा ही किया है। उन्होंने अपने 'गप्प' को, जिसे हम उपन्यास कहते हैं, अत्यन्त विनोद की मुद्रा में, साथ ही पर्याप्त विश्वसनीयता के साथ, 'आत्मकथा' की संज्ञा दे दी है, और ऐसा भ्रम पैदा किया है कि उनके पट्ट शिष्य तक इस भ्रम के शिकार हो गये हैं।

उपन्यास का आरम्भ ही इस हिन्दी-संस्कृत मिश्रित वाक्य से होता है : अथ बाणभट्ट की आत्मकथा लिख्यते। इस वाक्य से इस किताब के 'संस्कृत पोथी' होत्रे का भ्रम पैदा किया गया है, यद्यपि चतुर सहृदय को इसकी असंगति और इसमें छिपा विनोद भाव भ्रमित नहीं कर सकता। इसके बाद 'प्रथम अध्याय' की जगह 'प्रथम उच्छ्वास' के प्रयोग और संस्कृत काव्यरचना की शैली में, संस्कृत में ही, शिव की स्तुति से उक्त भ्रम को और भी गाढ़ा करने का प्रयास किया गया है।

उपन्यास का आरम्भ 'कथामुख' से हुआ है, जिसका 'मैं', अर्थात् लेखक, स्वयं हजारी प्रसाद द्विवेदी नहीं, बल्कि कोई 'व्यो' हैं ! हिन्दी साहित्य के प्रबुद्ध विद्यार्थी जानते हैं कि ये 'व्यो' (व्योम) श्री व्योमकेश शास्त्री हैं, जो हजारी प्रसाद द्विवेदी का ही छद्म नाम है। इस प्रकार द्विवेदी जी 'कथामुख' में भी अपने को छिपा गये हैं और यह 'कथामुख' भूमिका न रह कर उपन्यास का अंग बन गया है। इस 'कथामुख' से पाठक को सूचना मिलती है कि 'पचहत्तर वर्षीय मिस कैथराइन, जो 'आस्ट्रिया के एक सम्भ्रान्त ईसाई परिवार की कन्या' हैं, और जिनकी भारत की पुरानी चीजों को ढूँढ़ने और एकत्र करने में गहरी दिलचस्पी है, अपनी शोण-यात्रा में एक 'पोथी' प्राप्त करती हैं जिसका स्वयं ही हिन्दी में अनुवाद करके व्योम को संशोधन और टंकन के लिए देती हैं। इस 'अनुवाद' में शीर्षक के स्थान पर मोटे मोटे अक्षरों में लिखा है : अथ बाणभट्ट की आत्मकथा लिख्यते। व्योम चक्कर में पड़ जाते हैं। वे पोथी को बाणभट्ट की आत्मकथा मानकर ही उसे टंकित कराते हैं, बाणभट्ट के ग्रन्थों से मिलाकर उसकी प्रामाणिकता की जाँच करते हैं, उसे नये सिरे से 'सम्पादित' करते हैं और लगभग दो वर्ष बाद (क्योंकि 'दीदी' या मिस कैथराइन पांडुलिपि सौंप देने के बाद व्योमकेश को चकमा देकर

विदेश चली गयी थी) उसे 'दीदी के अनुवाद' के रूप में प्रकाशित कराते हैं। 'कथामुख' में व्योमकेश को, और साथ ही पाठक को भी, यह भ्रम बना ही रहता है कि यह किताब बाणभट्ट की आत्मकथा का 'अनुवाद' है। पर 'उपसंहार' पढ़ने के बाद इस भ्रम का निरसन हो जाता है। मिस कैथराइन व्योम को लिखे अपने पत्र में कहती हैं : "... 'आत्मकथा' के बारे में तूने एक गलती की है। तूने उसे अपने 'कथामुख' में इस प्रकार प्रदर्शित किया है, मानो वह 'ऑटोबायोग्राफी' हो। ले भला ! तूने संस्कृत पढ़ी है, ऐसी ही मेरी धारणा थी, पर यह क्या अनर्थ कर दिया तूने ! बाणभट्ट की आत्मकथा शोणनद के प्रत्येक बालुका कण में वर्तमान है। छिः कैसा निर्बोध है तू, उस आत्मा की आवाज तुझे नहीं सुनाई देती? देख रे, तू पुरुष है, तू युवक है, तुझे इतना प्रमाद नहीं शोभता।"

इस प्रकार मिस कैथराइन एक भ्रम तोड़कर दूसरा रहस्य पैदा कर देती हैं। वे अपने पत्र में आगे कहती हैं : " भोले, 'बाणभट्ट' केवल भारत में ही नहीं होते, इस नरलोक से किन्नर लोक तक एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त है। तूने अपनी दीदी को कभी समझने की चेष्टा भी की ! प्रमाद, आलस्य और छिप्रकारिता--तीन दोषों से बच।" रहस्य यह है कि यह 'आत्मकथा' किसकी है? भारतीय बाणभट्ट की आत्मकथा तो यह नहीं ही है। व्योमकेश का मन भी ऊहापोह से भर जाता है। : "... शोणनद के अनन्त बालुकाकणों में से न जाने किस कण ने बाणभट्ट की आत्मा की यह मर्मभेदी पुकार दीदी को सुना दी थी। हाय, उस वृद्ध हृदय में कितना परिताप संचित है ! अस्त्रियवर्ष की यवनकुमारी देवपुत्र नन्दिनी क्या आस्ट्रिया- वासिनी दीदी ही हैं ! उनके इस वाक्य का क्या अर्थ है कि बाणभट्ट केवल भारतवर्ष में ही नहीं होते! आस्ट्रिया में जिस नवीन 'बाणभट्ट' का आविर्भाव हुआ था वह कौन था? हाय, दीदी ने क्या हमलोगों के अज्ञात अपने उसी कविप्रेमी की आँखों से अपने को देखने का प्रयत्न किया था? यह कैसा रहस्य है ? दीदी के सिवा और कौन है जो इस रहस्य को समझा दे? मेरा मन उस बाणभट्ट का सन्धान पाने को व्याकुल है।" (309) इससे यह रहस्य तो खुल जाता है कि यह किसी विदेशी 'बाणभट्ट' की कथा है, जो मिस कैथराइन का प्रेमी था; पर गुत्थी यह पैदा हो जाती है कि उस कविप्रेमी ने स्वयं अपनी कथा या आत्मकथा नहीं लिखी है। इस 'आत्मकथा' की लेखिका मिस कैथराइन हैं। इस गुत्थी को सुलझाते हुए व्योमकेश लिखते हैं : " यदि मेरा अनुमान ठीक है तो साहित्य में यह अभिनव प्रयोग है। मध्य युग के किसी किसी कवि ने राधिका की इस उत्कट अभिलाषा का वर्णन किया है कि वे समझ सकतीं कि कृष्ण उनमें क्या रस पाते हैं। श्रीकृष्ण ने भी, कहते हैं कि, राधिका की दृष्टि से अपने को देखना चाहा था और इसीलिए नवद्वीप में चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए थे। काव्य की और धर्मसाधना की दुनिया में जो कल्पना थी उसे दीदी ने अपने जीवन में सत्य करके दिखा दिया।" (पृ.309)

इससे उद्घाटित रहस्य इस रूप में सामने आता है कि मिस कैथराइन ने अपनी प्रेमकथा भारतीय बाणभट्ट की कल्पित कथा के रूप में प्रस्तुत की है। प्रेम उनके और उनके कविप्रेमी के बीच का है, पर 'आत्मकथा' में वे स्वयं भट्टिनी और उनका कविप्रेमी बाणभट्ट के रूप में है। 'आत्मकथा' की भट्टिनी और मिस कैथराइन के बाहरी रूप में साम्य देखा जा सकता है। सम्भव है, कैथराइन को भारतीय बाणभट्ट में अपने कविप्रेमी का रूप दिखाई पड़ा हो और अपने प्रति उसके प्रेम को बाणभट्ट पर आरोपित कर दिया हो। भट्टिनी तो उनकी अपनी प्रतिबिम्ब है ही। इस प्रकार यदि यह 'आत्मकथा' है तो मिस कैथराइन के कविप्रेमी की है, जो मिस कैथराइन द्वारा अपने प्रेमी में कायाप्रवेश की क्रिया से उद्भूत है ; या यह भी कह सकते हैं कि यह मिस कैथराइन की आत्मकथा है जो उसके कविप्रेमी की संवेदना की आँखों से देखी गयी है। कथालेखन की यह एक जटिल प्रक्रिया जान पड़ती है, जिसकी छानबीन भी कदाचित् कठिन है।

उपन्यास की आलोचना की दृष्टि से महत्वपूर्ण बात यह है कि हजारी प्रसाद द्विवेदी की प्रेम संवेदना या प्रेमानुभूति उपन्यास में बाणभट्ट की 'आत्मकथा' के रूप में व्यक्त हुई है। यह न तो संस्कृत कवि बाणभट्ट की आत्मकथा है न मिस कैथराइन के कविप्रेमी की और न ही मिस कैथराइन की। यदि यह 'आत्मकथा' है तो स्वयं उपन्यासकार की ही है। पर अधिक संगत कथन यह होगा कि इस उपन्यास की प्रेम संवेदना तो उपन्यासकार की है, पर उसकी अभिव्यक्ति के लिए 'आत्मकथा' का शिल्प अपनाया गया है। उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें शेखर : एक जीवनी की तरह अज्ञेय से बाह्य रूप में भी मिलता जुलता पात्र अपनी जीवनी नहीं लिख रहा है, बल्कि एक ऐतिहासिक पात्र, बाणभट्ट, अपनी कहानी लिख रहा है। इतना ही नहीं, जैसा व्योमकेश ने लक्षित किया है, "...कथा को ध्यान से पढ़ने वाला प्रत्येक सहृदय अनुभव करेगा कि कथालेखक जिस समय कथा लिखना शुरू करता है उस समय उसे समूची घटना ज्ञात नहीं है। कथा बहुत कुछ आजकल की 'डायरी' शैली पर लिखी गयी है। ऐसा जान पड़ता है कि जैसे जैसे घटनाएँ अग्रसर होती जाती हैं वैसे वैसे लेखक उन्हें लिपिबद्ध करता जा रहा है। जहाँ उसके भावावेश की गति तीव्र होती है वहाँ वह जम कर लिखता है परन्तु जहाँ दुःख का आवेग बढ़ जाता है वहाँ उसकी लेखनी शिथिल हो जाती है। अन्तिम उच्छ्वासों में तो वह जैसे अपने में ही धीरे धीरे डूब रहा है।" (पृ. 306) यह एक अलग जाँच का क्षेत्र है। प्रस्तुत प्रसंग में यह विचारणीय है कि बाणभट्ट की आत्मकथा में 'आत्मकथा' की प्रविधि का कितना सार्थक उपयोग किया जा सका है।

उपन्यास का आरम्भ बड़े सहज रूप में, आत्मकथात्मक प्रविधि में, होता है : "यद्यपि बाणभट्ट नाम से ही मेरी प्रसिद्धि है ; पर यह मेरा वास्तविक नाम नहीं है। इस नाम का इतिहास लोग न जानते, तो अच्छा था। मैंने प्रयत्नपूर्वक इस इतिहास से लोगों को अनभिज्ञ रखना चाहा है; पर नाना कारणों से अब मैं उस इतिहास को अधिक नहीं छिपा सकता। मेरी लज्जा का प्रधान कारण यह है कि मेरा जन्म जिस प्रख्यात वात्स्यायन वंश में हुआ है, उसके धवलकीर्ति-तट पर यह कहानी एक कलंक है। मेरे पितृ-पितामहों के गृह वेदाध्यायियों से भरे रहते थे। उनके घर की शुक-सारिकाएँ भी विशुद्ध मन्त्रोच्चारण कर लेती थीं, और यद्यपि यह बात लोगों को अतिशयोक्ति जैवगी, परन्तु यह सत्य है कि मेरे पूर्वजों के विद्यार्थी उनकी शुक-सारिकाओं से डरते रहते थे।" (पृ. 11) इस उद्धरण में पाठक से आत्मीयता स्थापित कर उसे बाँध लेने की अद्भुत क्षमता है। उपन्यासकार चाहता तो अन्य पुरुष की प्रविधि में भी बाणभट्ट की कथा प्रस्तुत कर सकता था। पर उसमें वह विश्वसनीयता नहीं होती जो स्वयं बाणभट्ट से उसकी कहानी सुनने में है। पाठक श्रोता के रूप में स्वयं बाणभट्ट के रू-ब-रू है और उसकी ही जुबानी उसकी कहानी सुन रहा है। लगभग डेढ़ हजार वर्ष पूर्व के ऐतिहासिक व्यक्ति से उसकी कहानी सुनने का रोमांच कैसा होगा, इसका अनुभव पाठक बहुत अच्छी तरह करता है। बाणभट्ट पहले दूसरों से सुनी अपने प्रख्यात वात्स्यायन वंश की कथा सुनाता है। तत्पश्चात् अपनी देखी सुनाता है। कथा में जहाँ भी उसे वर्णन का अवसर मिलता है, उसका कवि सजग हो जाता है; पर प्रारम्भ में वह अपने कवि को अधिक मौका नहीं देता, उसका किस्सागो रूप ही प्रबल बना रहता है। भाषा बिल्कुल सरल, पाठक से निष्कपट आत्मीयता और अपने को खोल कर रख देने वाली कन्फेशन की मुद्रा : "...ऐसे ही कृती पिता का मैं पुत्र था--जन्म का आवारा, गप्पी, अस्थिरचित्त और घुमक्कड़। मैं घर से जब निकल भागा था, तो अपने साथ गाँव के अन्य छोकरो को भी फोड़ ले गया था। वे अन्त तक मेरे साथ नहीं रहे, तो भी मैं गाँव में बदनाम तो हो ही गया था। मगध की बोली में 'बण्ड' पूँछ कटे बैल को कहते हैं। वहाँ यह कहावत मशहूर है कि 'बण्ड आप आप गये, साथ में नौ हाथ का पगहा भी लेते गये।' सो लोग मुझे बण्ड कहने लगे। इसी को बाद में संस्कृत शब्द 'बाण' द्वारा संस्कार करके मैंने इस नाम की कुछ इज्जत बढ़ा ली। भट्ट तो लोगों ने और बाद में जोड़ा। वैसे मेरा असली नाम दक्ष था। इधर मेरे प्रति लोगों का आदर

और स्नेह का भाव बढ़ गया है, वे चाहें तो दक्ष भट्ट कर लें। बड़ी होशियारी से मैंने यह नाम अन्यत्र सुरक्षित रख छोड़ा है। उसकी कहानी मैं अभी बताऊँगा।” (पृ. 12)

बाणभट्ट की आत्मकथा का
शिल्प

इसके बाद बाणभट्ट संक्षेप में अपने परिवार का परिचय देता है और अपने आरम्भिक 'आवारापन' के बारे में बताता है। हर्षचरित में बाणभट्ट ने अपने प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में जो सूचनाएँ दी हैं, उनसे यह कथा, कल्पित होती हुई भी, बिल्कुल मेल खाती है। पर उपन्यास का बाणभट्ट, एक कुशल किस्सागो की तरह, अपने आरम्भिक जीवन की पूरी कहानी एक साँस में नहीं सुना जाता। श्रोता-पाठक के कौतूहल को नजरअन्दाज करता हुआ वह अपने प्रथम बार स्थाण्वीश्वर नगर पहुँचने के प्रसंग पर चला जाता है। कुछ नहीं तो, कम से कम, दस वर्षों के समय के अन्तराल को तो वह लाँघ ही जाता है। पर इस प्रसंग तक पाठक-श्रोता को लाकर बाणभट्ट उनसे सहृदयता की कुछ अधिक माँग करने लगता है। बाणभट्ट की कथा के श्रोता को 'सहृदय' तो होना ही होगा ! नगर के राजमार्ग पर चले जा रहे 'जुलूस' के वर्णन में बाणभट्ट का कवि अपने पूरे वैभव के साथ प्रकट हो जाता है और पाठक-श्रोता भी सजग हो जाता है कि वह संस्कृत के महान् गद्यकार बाणभट्ट की 'आत्मकथा' पढ़-सुन रहा है। अब बाणभट्ट कभी किस्सागो के रूप में तो कभी वर्णनकर्ता कवि के रूप में पाठक को बोध और रहस्यात्मकता के विभिन्न स्तरों पर चढ़ाता-उतारता रहता है। बीच बीच में अपनी स्मृति के व्याज से वह पाठक को अपने बचपन की भी एकाध झाँकी दिखा देता है। इस प्रकार वर्तमान और अतीत को एक साथ गूँथकर, अपने अतीत को भी वर्तमान बनाकर, बाणभट्ट का किस्सागो कथा में एक अद्भुत रमणीयता पैदा कर देता है।

अपनी कथा को कौतूहलपूर्ण बनाने की कला में बाणभट्ट बहुत कुशल है। अपनी 'आवारागी' के दिनों की जो कथा उसने श्रोता-पाठक से छिपा रखी है, उसे वह अत्यन्त नाटकीय रूप में प्रस्तुत करता है। कुमार कृष्णवर्धन से मित्रता स्थापित करने के लिए जाते समय उसे बीच में ही अपनी पुरानी नाट्यमंडली की एक अभिनेत्री, निपुणिका, मिल जाती है, और उसका कार्यक्रम धरा का धरा रह जाता है। निपुणिका से बाणभट्ट का यह मिलन इतना आकस्मिक और नाटकीय है कि पाठक उसमें पूरी तरह से रम जाता है। बाणभट्ट को निपुणिका का, और उसके साथ अपने सम्बन्ध का, परिचय देने का अवसर सहज ही मिल जाता है। इस प्रकार एक बार फिर बाणभट्ट के 'आवारापन' के दिनों की कहानी, अपनी पूरी रमणीयता के साथ उद्घाटित हो जाती है। इस प्रसंग की मार्मिकता इस बात में निहित है कि निपुणिका बाणभट्ट से प्रेम कर बैठी थी और उससे उपेक्षा पाकर, लज्जा और पश्चाताप वश, उसकी नाटकमंडली छोड़ कर भाग गयी थी। पर स्वयं बाणभट्ट भी उस प्रेम से अछूता नहीं रहा था। इस अत्यन्त मार्मिक प्रसंग को किस्सागो बाणभट्ट ने अद्वितीय सर्जनात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है।

इस प्रसंग के बाद पुनः कहानी वर्तमान में आ जाती है और बाणभट्ट 'कथा' न कह कर निपुणिका की मनोदशा का अंकन करने लग जाता है। इसके साथ साथ उसकी अपनी मनोदशा भी पाठक के सामने आती रहती है। कथा काल के एक बिन्दु पर ठिठक सी गयी है और दो प्रेमी हृदयों की मनोदशाओं की परतें, एक के बाद एक, खुलती चली जाती हैं। भावुकताजन्य मार्मिकता की दृष्टि से यह प्रसंग अद्भुत है। पर यह कहना अधिक संगत है कि इस प्रकार के मार्मिक, भावुकतापूर्ण स्थल उपन्यास में भरे पड़े हैं।

बाणभट्ट और निपुणिका के वार्तालाप के माध्यम से पुनः कथा आगे बढ़ती है। यह वार्तालाप भी 'आपबीती' के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है, पर इसे इतना सन्तुलित रखा गया है कि वह अविश्वसनीय न प्रतीत हो। स्मृति के माध्यम से प्रस्तुत संवाद की विश्वसनीयता को बनाए रखना

प्रायः कठिन होता है, पर बाणभट्ट की 'आपबीती' के साथ गुँथे संवाद कहीं भी अविश्वसनीय नहीं प्रतीत होते। ये संवाद अनेकत्र कथा की गुत्थियों को खोलते और कथा को आगे भी बढ़ाते हैं। उदाहरणार्थ बाणभट्ट और भट्टिनी के संवाद से ही पाठक को ज्ञात होता है कि वह देवपुत्र तुवर मिलिन्द की कन्या है। कहीं कहीं ऐसे संवाद भी हैं, जिनमें बाणभट्ट स्वयं शामिल नहीं है, पर वे संवाद उसके सामने घटित होते हैं, अतः वह उन्हें पाठक को ज्यों का त्यों सुना जाता है।

इस प्रकार वस्तु-वर्णन, मनोभावों के अंकन, संवाद योजना आदि के साथ बाणभट्ट की आत्मकथा वर्तमान और अतीत में संचरण करती हुई अग्रसर होती है। पर समस्या वहाँ पैदा होती है जहाँ बाणभट्ट किसी कथा प्रसंग का प्रत्यक्ष साक्षी नहीं है। उदाहरण के लिए चंडीमंडप के पुजारी का वर्णन। बाणभट्ट स्वयं इस विचित्र पुजारी को नहीं जानता, फिर वह किस प्रकार उसका वर्णन करे। इसके लिए उपन्यासकार ने 'एक वृद्ध ब्राह्मण' की कल्पना कर ली है जो बाणभट्ट को पुजारी के बारे में बहुत सी मनोरंजक सूचनाएँ देता है। पाठक को यह वर्णन बाणभट्ट के माध्यम से ही प्राप्त होता है। तत्पश्चात् स्वयं बाणभट्ट की मुठभेड़ भी पुजारी से हो जाती है और पाठक वह कथा प्रसंग बाणभट्ट की जुबानी सुनता है।

षष्ठ अध्याय में बाणभट्ट पुनः अपने अतीत में प्रवेश करता है। निमित्त बनती है चंडीमंडप छोड़ते समय बाणभट्ट के चिन्ताकुल मस्तिष्क में उदित उसकी एक स्वरचित 'आर्या'। बाणभट्ट को उस प्रसंग की स्मृति हो आती है जिसमें एक वृद्धा ने अपने पुत्र, और अपनी बहू के विरक्त पति, के सन्धान के लिए उससे आशीर्वाद की याचना की थी। बाद में बड़ी कुशलता से इस प्रसंग को विरतिवज्र और सुचरिता की कथा से जोड़ दिया गया है।

उपन्यास के कई प्रसंगों का बाणभट्ट प्रत्यक्ष साक्षी नहीं है। उदाहरण के लिए भट्टिनी के अपहरण और उसके 'छोटे राजकुल' के अन्तःपुर में बन्दिनी बनाये जाने का प्रसंग। यह प्रसंग पाठक को भट्टिनी की आपबीती के रूप में प्राप्त होता है। भट्टिनी अपनी आपबीती बाणभट्ट को सुनाती है, और बाणभट्ट उसे पाठक-श्रोता तक पहुँचाता है। इसी प्रकार बाणभट्ट की नाट्यमंडली से निकल भागने के बाद निपुणिका पर क्या बीती, यह बाणभट्ट को भी ज्ञात नहीं है। अतः यह कथा पाठक को निपुणिका की आपबीती के रूप में उपलब्ध होती है, जिसे वह बाणभट्ट को सुना रही है। यहाँ हम फिर कथाक्रम में पीछे की ओर लौटते हैं और आगे बढ़ने वाली कथा एक समय-बिन्दु पर रूक जाती है। अतीत वर्तमान में आ जाता है।

उपन्यास में एक वार्तालाप-प्रसंग ऐसा भी है, जो बाणभट्ट के सामने सम्भव नहीं है, क्योंकि उसमें भट्टिनी महामाया के समक्ष बाणभट्ट के प्रति अपने अनुराग को स्वीकार कर रही है, पर कथा में उसकी असन्दिग्ध सार्थकता है। पर पाठक इस संवाद को कैसे सुने, क्योंकि उसे जो भी प्राप्त हो रहा है, वह बाणभट्ट की 'आपबीती' के रूप में है। अतः इसके लिए यह कौशल अपनाया गया है कि बाणभट्ट छिप कर यह वार्तालाप सुने और पाठक-श्रोता तक इसे पहुँचाए। इस कौशल से भट्टिनी-महामाया का गोपन संवाद (पृ. 144-45) पाठक को उपलब्ध हो जाता है।

जब औपन्यासिक संसार बहुत व्यापक और जटिल होने लगता है, तो आत्मकथात्मक प्रविधि की दुर्बलता भी सामने आने लगती है। इसे दूर करने के लिए उपन्यासकार को अन्य प्रविधियों की सहायता लेनी पड़ती है। उपन्यास की एक पात्र है सुचरिता जिसके बारे में बाणभट्ट प्रत्यक्ष रूप में बहुत कम जानता है। सुचरिता निपुणिका की सखी है और वह वस्तुतः गृहस्थ धर्म का त्याग कर पहले बौद्ध भिक्षु, और अन्ततः आचार्य बेंकटेश भट्ट के भक्तिमार्ग में दीक्षित, विरतिवज्र की पत्नी है। वह स्वयं भी इस भक्तिमार्ग में दीक्षा ले चुकी है। यों उपन्यास के

विज्ञान में इस प्रसंग की सार्थकता बहुत नहीं है, पर हर्ष-बाण कालीन धर्म साधना के एक अध्याय से परिचित कराने के लिए उपन्यासकार ने इस प्रसंग की योजना की है और अपनी कल्पना तथा संवेदनशीलता से इसे बहुत मार्मिक बना दिया है। यों तो बाणभट्ट की भेंट पहले भी सुचरिता और विरतिवज्र से हो चुकी है, पर सुचरिता ही विरतिवज्र की पत्नी है, यह न उसे ज्ञात है न पाठक को। भद्रेश्वर दुर्ग से स्थाण्वीश्वर पहुँचने पर सुचरिता का कुछ वृत्त उसे एक 'भद्र वृद्ध पुरुष' से प्राप्त होता है, जिसे वह अपनी 'आत्मकथा' के पाठक-श्रोता को बताता है। इसके बाद वह सुचरिता से मिलता भी है और उसकी पूरी कहानी पाठक के सामने आती है। पर सुचरिता की अतीत कथा पाठक को कैसे प्राप्त हो, इसके लिए सुचरिता से ही उसकी 'आपबीती' कहलाई गयी है जो बाणभट्ट के द्वारा पाठक-श्रोता को प्राप्त होती है। यद्यपि सुचरिता की भाषा बाणभट्ट की भाषा से अनावश्यक रूप से आक्रान्त होने के कारण पाठक को खटकती है, पर इससे उसके रस-बोध में कोई बाधा नहीं पड़ती। इस प्रकार 'आत्मकथा' के भीतर 'आत्मकथा' की प्रविधि अपना कर शिल्प विषयक कठिनाई को दूर करने की कोशिश की गयी है।

बाणभट्ट को अपनी कथा से जुड़े कतिपय पात्रों की कथा अन्य स्रोतों से प्राप्त होती है। इनमें से एक कथा महामाया की है। स्वयं बाणभट्ट महामाया के रहस्यों से परिचित नहीं। हर्षवर्धन की राजसभा का कवि धावक उसे इस रहस्य से अवगत कराता है कि महामाया मौखरिकुल के पृतापी राजा विग्रहवर्मा की प्रथम पत्नी, और राज्यश्री की सौत, है। महामाया की शेष कथा कंचुकी वाभ्रव्य से प्राप्त होती है। यह वाभ्रव्य की आपबीती है, जिसे वह भट्टिनी को सुनाता है, बाणभट्ट तो मात्र उसका श्रोता-साक्षी है। यह भी आत्मकथा के भीतर आत्मकथा की योजना का ही कौशल है।

12.3 रोमांस के तत्व

रोमांस उपन्यास की पूर्ववर्ती साहित्य विधा है। जो बोलचाल की भाषा में लिखित ऐसी गद्यकथा होता था जिसका मुख्य विषय वीरतापूर्ण साहस-कर्म हुआ करता था। प्रेम कथाएँ और धार्मिक रूपक कथाएँ भी प्रायः इसमें मिलीजुली रहती थीं, पर ये इसके लिए अनिवार्य नहीं थीं। शौर्य और साहस का चित्रण ही इसका मुख्य उद्देश्य होता था। प्रारम्भ से ही इन रचनाओं में मोहक, दूरस्थ और अद्भुत तत्वों की प्रधानता होती थी। इनमें वर्णनात्मक व्योरे विपुल मात्रा में हुआ करते थे तथा प्रेम कथाएँ अधिकतर सुखान्त होती थीं। इस विधा के उदाहरण गद्य और पद्य दोनों में मिलते हैं, पर सामान्यतः, परवर्ती काल में, गद्य ही इसका मुख्य माध्यम बना। यूरोपीय रोमांस की जो विशेषताएँ बतायी जाती हैं, वे संस्कृत में रचित बाणभट्ट कृत कादम्बरी, दंडी कृत दशकुमारचरित, सुबन्धु कृत वासवदत्ता आदि गद्यकाव्यों में भी उपलब्ध होती हैं। कथासरित्सागर की कथाओं में भी रोमांस के तत्व भरपूर मात्रा में मिलते हैं। संस्कृत और हिन्दी में इस विधा का विकास नहीं हुआ, यद्यपि अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी में रचित प्रेमकाव्य इसके अवशेष के रूप में देखे जा सकते हैं।

प्रजाति की दृष्टि से रोमांस से जुड़े होने पर भी उपन्यास एक स्वतन्त्र साहित्य रूप है। क्लारा रीव ने अपनी टाइम ऐंड नावल नामक पुस्तक में उपन्यास और रोमांस का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि उपन्यास वास्तविक जीवन और व्यवहार (मैनेर्स) का चित्र है। वह अपने समय का दर्पण है। इसके विपरीत रोमांस की भाषा अतिशयोक्तिपूर्ण होती थी, जिसे क्लारा रीव ने 'उदात्त और उन्नीत भाषा' (लॉश्टी ऐंड एलिवेटेड लैंग्वेज) कहा है। रोमांस, क्लारा रीव के अनुसार, वैसी बातों का वर्णन करता है, जो न कभी घटीं और न जिनके कभी घटने की सम्भावना है। उपन्यास प्रतिदिन हमारी आँखों के सामने गुजरने वाली चीजों

को, ऐसी बातों को जो हमारे दोस्तों या खुद हमारे साथ घट सकती हैं, उनके सुपरिचित सम्बन्धों के साथ प्रस्तुत करता है। इसकी सफलता प्रत्येक प्रसंग को इतने सहज और सामान्य रूप में प्रस्तुत करने में, उन्हें इतना विश्वसनीय बना देने में है कि हम समझने लगें कि वह सब कुछ यथार्थ है; हम कथा के पात्रों के सुख-दुख से इतने प्रभावित हो जाएँ, मानो वे हमारे अपने हैं।

बाणभट्ट की आत्मकथा एक उपन्यास है। इसमें रोमांस के तत्व अवश्य मिल जाते हैं लेकिन एक विधा के रूप में इसे रोमांस नहीं कहा जा सकता। यद्यपि इसमें दो प्रेमकथाएँ भी हैं और कतिपय साहसाभियान भी, पर वे रोमांस की कोटि में नहीं रखे जा सकते। रोमांस की प्रेमकथाएँ बहुत आकस्मिक ढंग से आरम्भ होती हैं और उनमें शरीर का आकर्षण बहुत प्रबल होता है। रोमांस की प्रेमकथा की समाप्ति भी अधिकतर नायक-नायिका के मिलन और विवाह में होती है। रोमांस में प्रेमरम्भ के बाद नायक की ओर से नायिका को प्राप्त करने के प्रयास होते हैं और अनेक कठिनाइयों से गुजरने, साहसपूर्ण अभियानों में सफल होने तथा संकटों को पार करने के बाद उसकी अपनी प्रेमिका से भेंट होती है और फिर प्रेमी-प्रेमिका विवाह-सूत्र में बँध जाते हैं। कुछ रोमांसों में नायक या नायिका की मृत्यु भी हो जाती है; पर रोमांसों की सामान्य प्रवृत्ति सुखान्त होने की ही है। अतः पारिभाषिक अर्थ में 'बाणभट्ट की आत्मकथा' रोमानी होते हुए भी रोमांस न होकर उपन्यास की कोटि में आने वाला उपन्यास है। रोमानियत इसकी एक विशेषता मानी जा सकती है।

बाणभट्ट की आत्मकथा में निपुणिका-बाणभट्ट और भट्टिनी-बाणभट्ट की प्रेमकथाएँ प्रस्तुत की गयी हैं। पर इन प्रेमकथाओं की प्रकृति रोमांस से बिल्कुल भिन्न है। बाणभट्ट रचित कादम्बरी एक रोमांस है, पर उपन्यास के रूप में प्रस्तुत उसकी यह तथाकथित 'आत्मकथा' रोमांस का आभास भी प्रस्तुत नहीं करती। निपुणिका का बाणभट्ट से प्रेम मोहासक्ति से आरंभ होकर आत्मोत्सर्ग की उत्कर्षता तक पहुँचता है। यह वह प्रेम नहीं है जो रोमांस में वर्णित होता है।

भट्टिनी और बाणभट्ट का प्रेम-प्रसंग तो और भी सूक्ष्म तथा गैर-रूमानी है। बाणभट्ट स्वभाव से ही नारी का सम्मान करने वाला व्यक्ति है। इसके साथ ही निपुणिका से उसका प्रच्छन्न अनुराग भाव भी है। अतः भट्टिनी के प्रति कामभाव से अनुरक्त होना उसके लिए अकल्पनीय है।

पर बाणभट्ट के प्रति भट्टिनी के अनुराग भाव का स्पष्ट संकेत पाठक को महामाया और भट्टिनी के संवाद (पृ. 144-45) से ही मिल पाता है। महामाया भट्टिनी से पूछती हैं कि वह बाणभट्ट को क्या समझती है। भट्टिनी उत्तर देती है : "क्या बताऊँ, आर्ये, जिस दिन भट्ट ने मुझसे प्रथम वाक्य कहा था, उस दिन मेरा नवीन जन्म हुआ; उस दिन सूर्य उदयगिरि के तट पर मांगल्य वर्षा कर उदित हुआ था; उस दिन उपःकाल ने मेरे सम्पूर्ण जीवन को परम सौभाग्य से भर दिया था। मैंने उस दिन अपनी सार्थकता को प्रथम बार अनुभव किया।.... मैंने प्रथम बार अनुभव किया कि मेरे भीतर एक देवता है, जो आराधक के अभाव में मुरझाया हुआ बैठा है। मैंने प्रथम बार अनुभव किया कि भगवान ने नारी बनाकर मुझे धन्य किया है।" (पृ. 144) वह आगे कहती है : "माँ, भट्ट इस पृथ्वी के पारिजात हैं, इस भवसागर के पुंडरीक हैं, इस कंटकमय भुवन के मनोहर कुसुम हैं।" (पृ. 145) इन शब्दों से गुजरने के बाद बाणभट्ट के प्रति भट्टिनी के अनुराग भाव में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

जिस अनुराग भाव का प्रकाशन ही इतने गूढ़ रूप में होता हो, वह रोमांस का प्रेम नहीं हो सकता। धीरे धीरे बाणभट्ट के प्रति भट्टिनी का यह अनुराग भाव प्रगाढ़ होता जाता है, पर उसकी अभिव्यक्ति कहीं भी मुखर और प्रगल्भ नहीं होती। यह मुखरित तब होता है जब बाणभट्ट भट्टिनी के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है कि वह उसके साथ चलकर 'म्लेच्छ' कहे जाने वाले लोगों का, अपनी अपूर्व काव्यशक्ति से, हृदय-परिवर्तन करने का संकल्प करे। बाणभट्ट वचन देता है और भट्टिनी महावाराह को साक्षी बनाकर उसे अपने सहचर के रूप में स्वीकार करती है। इस प्रकार यह प्रेम एक महान् लक्ष्य की प्राप्ति का साधन बन कर ही सार्थकता प्राप्त करता है। निस्सन्देह प्रेम की यह परिणति रोमांस की प्रकृति के अनुकूल नहीं है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, रोमांस की दूसरी प्रमुख विशेषता उसमें नियोजित साहसाभियान के प्रसंग होते हैं। नायिका से प्रेम हो जाने के बाद नायक उसे प्राप्त करने के लिए जमीन आसमान एक कर देता है, अनेक संकटों का सामना करते हुए, समुद्र और पर्वत लाँघते हुए, प्राणों की बाजी लगाते हुए, यहाँ तक कि अतिलौकिक शक्तियों से भी संघर्ष करते हुए अपनी प्रेमिका को प्राप्त करने में सफल होता है। बाणभट्ट की आत्मकथा का आरम्भ भी एक साहसाभियान से होता है, पर इसकी प्रकृति रोमांस के साहसाभियानों से नितान्त भिन्न है।

रोमांस की कथा में अतिलौकिक तत्वों की प्रचुरता तथा कारणत्व के प्रति उपेक्षा भाव होता है। उसका एकमात्र लक्ष्य भी प्रेमिका की प्राप्ति होता है। रोमांस में प्रेमोत्पत्ति के बाद साहसाभियान आरम्भ होता है पर बाणभट्ट की आत्मकथा में साहसाभियान का लक्ष्य सामन्ती अत्याचार की शिकार, कन्या का उद्धार है। यह एक महान् मानवीय मूल्य है, प्रेम का तूफानी आवेग नहीं। अतिलौकिक और अविश्वसनीय तत्व तो इसमें हैं ही नहीं। 'घटनाएँ' इसमें अवश्य हैं, और कहीं कहीं उनमें आकस्मिकता भी है, जो रोमांस का गुण है, पर ये घटनाएँ और आकस्मिकताएँ कहीं भी अविश्वसनीय नहीं हुई हैं।

12.4 इतिहास और कल्पना का सर्जनात्मक मिश्रण

उपन्यास, कथा की दृष्टि से, इतिहास के बहुत निकट होता है। गद्य में लिखित कथा दोनों में होती है, पर उपन्यास की कथा जहाँ कल्पना प्रधान होती है, वहाँ इतिहास की कथा तथ्याधारित होती है। उपन्यास की कथा कल्पना प्रधान होते हुए भी यथार्थ होती है जबकि इतिहास की कथा मात्र तथ्य होती है जिसके लिए जरूरी नहीं कि वह यथार्थ ही हो। वस्तुतः यथार्थ का सम्बन्ध अनुभव और संवेदना से है जिसकी गुंजायश इतिहास में न के बराबर होती है। इतिहास की कोई भी घटना तथ्य रहित नहीं हो सकती, जबकि उपन्यास में इसकी कोई जरूरत नहीं होती।

किन्तु ऐतिहासिक उपन्यास की स्थिति कुछ भिन्न होती है। इसमें दो परस्परविरोधी तत्व, इतिहास और कल्पना, आपस में मिलकर औपन्यासिक कथासंसार का निर्माण करते हैं। इतिहास में कल्पना की कोई गुंजायश नहीं होती। उपन्यासकार इतिहास से लिए गए तथ्यों में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। पर ऐतिहासिक उपन्यासकार अपने को इतिहास तक सीमित नहीं रखता। वह अतीत के उन क्रान्तियों या क्षेत्रों को अपनी रचना का विषय बनाता है, जहाँ इतिहास साक्ष्य के अभाव में नहीं पहुँच पाता। ऐसे ही क्षेत्रों में उसकी कल्पना को सक्रिय होने का अवसर मिलता है, यद्यपि वहाँ भी कल्पना के पंख तत्कालीन ऐतिहासिक यथार्थ या सम्भावनाओं के अनुशासन में बँधे रहते हैं। उपन्यासकार की कल्पना की सक्रियता ऐतिहासिक पात्रों के चरित्र-निर्माण और उनके अन्तर्जगत् के चित्रण में भी सम्भव होती है, क्योंकि

इतिहास अपने को इससे प्रायः अलग रखता है। इसी प्रकार इतिहास में, विशेष कर परम्परागत इतिहास में, प्रमुख राजनीतिक घटनाओं का ही विवरण और विश्लेषण होता है, सामान्य जनजीवन का नहीं। उपन्यासकार अतीत के इस आयाम को भी अपना चित्रणीय विषय बनाता है, जहाँ कल्पना के लिए असीम अवकाश होता है। साधारण स्तर के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहासग्रन्थों में वर्णित राजनीतिक घटनाओं और उनसे सम्बन्धित विवरणों की अधिकता होती है, जबकि श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास राजनीतिक घटनाओं और विवरणों को नहीं, बल्कि ऐतिहासिक यथार्थ के अंकन और ऐतिहासिक या कल्पित पात्रों के चरित्रनिर्माण के माध्यम से मानवीय सम्बन्धों और संवेदनाओं के अंकन को महत्त्व देते हैं। श्रेष्ठ कोटि के ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास के प्रमुख व्यक्तित्वों को अपनी रचनाओं में बहुत गौण स्थान देते हैं ; उनके प्रमुख पात्र इतिहास के अपेक्षाकृत गौण व्यक्ति होते हैं। ऐसा करने से उपन्यासकार को अपने कल्पित कथासंसार के सृजन की अनेक सम्भावनाएँ उपलब्ध हो जाती हैं, यद्यपि इतिहास का जो भी, और जितना भी, अंश उसकी रचना में आता है, वह उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों के विरोध में नहीं जा सकता।

बाणभट्ट की आत्मकथा ऐतिहासिक उपन्यास है। द्विवेदी जी के उपन्यासों में ऐतिहासिक यथार्थ की प्रस्तुति का विवेचन करने के पूर्व हमें यह तय कर लेना होगा कि ऐतिहासिक उपन्यास में ऐतिहासिक यथार्थ का क्या स्थान है और उसका अपेक्षित स्वरूप क्या है। अनेक आलोचक, और प्रायः रचनाकार भी, अक्सर मान लेते हैं कि ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास की पुनःप्रस्तुति है, जिसमें उपन्यासकार इतिहास की भूली कड़ियों को जोड़ने के साथ साथ अपनी कल्पनाशक्ति से ऐतिहासिक पात्रों के चरित्र का पुनर्निर्माण करता है। इसमें सन्देह नहीं कि उपन्यास में यह भी होता है, पर उसका मुख्य लक्ष्य होता है किसी कालविशेष के ऐतिहासिक यथार्थ का उद्घाटन तथा उसकी तर्कसंगत व्याख्या। इस क्रम में औपन्यासिक संसार ऐतिहासिक तथ्यों से भी जुड़ा रहता है, पर वह अपना विस्तार उन क्षेत्रों में करने से नहीं चूकता जहाँ इतिहास धुँधला होता है या तथ्यों पर उसकी पकड़ ढीली होती है। इसी प्रकार उपन्यासकार अपने पात्रों के चरित्र-निर्माण और उनकी विचारधारा की प्रस्तुति में भी एक सीमा तक स्वतन्त्र होता है। वह सीमा मात्र यह है कि कथाकार की कल्पना को ऐतिहासिक तथ्यों के सीधे विरोध में नहीं जाना चाहिए। कल्पना कहीं भी इतिहास को छोड़ती नहीं, न उसकी अवज्ञा करती है, पर इतिहास भी कल्पना के मुक्त उपयोग में बाधक नहीं बनता। औपन्यासिक संसार में कल्पना पर निरन्तर आघात करने वाली एक ही चीज होती है ; वह है, यथार्थ बोध। औपन्यासिक कल्पना कहीं भी, किंचित् मात्र भी, यथार्थबोध की उपेक्षा नहीं कर सकती। ऐतिहासिक उपन्यासकार को एक तरफ ज्ञात ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति निष्ठा बरतनी होती है और दूसरी तरफ उसे ऐतिहासिक यथार्थ के चित्रण के प्रति प्रतिबद्ध होना होता है। आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों में ऐतिहासिक घटनाएँ गौण हैं ; उन्होंने इतिहास से कम-से-कम तथ्यों को लेकर उन पर अपनी कल्पना को उन्मुक्त भाव से पल्लवित होने दिया है। उनका मुख्य लक्ष्य इतिहास का प्रस्तुतीकरण नहीं, ऐतिहासिक यथार्थ की वैज्ञानिक व्याख्या और विश्लेषण है। अक्सर वे ऐतिहासिक तथ्यों की प्रामाणिकता पर उतना ध्यान नहीं देते, जिसके कारण इतिहास के प्रति जागरूक विद्वानों को उनके उपन्यासों में पाई जाती असंगतियाँ खटकती हैं।

सर्वप्रथम हम बाणभट्ट की आत्मकथा में आए ऐतिहासिक तथ्यों की प्रामाणिकता की परीक्षा करें। इसका केन्द्रीय पात्र, बाणभट्ट, एक ऐतिहासिक व्यक्ति है, जो हर्षचरित और कादम्बरी के रचनाकार के रूप में ख्यात है। पर इतिहास ग्रन्थों में बाणभट्ट की स्थिति गौण है ; वहाँ बाणभट्ट के आश्रयदाता कान्यकुब्जेश्वर सम्राट् हर्षवर्द्धन, उसकी बहन राज्यश्री आदि का ही अधिक महत्त्व है। बाणभट्ट की आत्मकथा में राज्यश्री का तो नामोल्लेख मात्र ही हुआ है, जबकि हर्षवर्द्धन भी गौण पात्र के रूप में ही सामने आता है। उपन्यासकार ने इनके वर्णन में स्वयं को उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों से दूर नहीं जाने दिया है और उनके संक्षिप्त चरित्र को भी

उपलब्ध साक्ष्यों के अनुरूप ही अंकित किया है। बाणभट्ट की आत्मकथा में भी हर्षचरित की सामग्री ज्यों की त्यों ले ली गयी है, पर चरित्र-निर्माण में कल्पना की सुगन्ध मिला दी गयी है। दूसरी तरफ उपन्यास में बाणभट्ट के परिवार, बचपन, किशोरावस्था तथा उसके श्रीहर्ष का राजकवि बनने के प्रसंग तो हर्षचरित से ही लिये गये हैं, पर उसका शेष चरित्र, जो उपन्यास का मुख्य विषय है, समकालीन ऐतिहासिक यथार्थ से अनुशासित होते हुए भी, पूर्णतः कल्पित है। यदि कोई उसे ऐतिहासिक मान बैठता है तो यह उसका भ्रम है। उपन्यास में और भी कई पात्र आते हैं, जिनका आधार, क्षीण रूप में ही सही, ऐतिहासिक है।

बाणभट्ट की आत्मकथा का एकपात्र है धावक, जो हर्ष का राजकवि है। धावक को कुछ यूरोपीय विद्वान् लोकभाषा का कवि मानते हैं। द्विवेदी जी ने उसे एक हास्यप्रिय, मस्तमौला कवि के रूप में प्रस्तुत किया है। विद्वानों का यह भी अनुमान है कि हर्ष के नाम पर प्रचलित नाटिकाएँ, प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द धावक या बाणभट्ट की लिखी हुई हैं। द्विवेदी जी ने यह अनुमान प्रस्तुत किया है कि ये रचनाएँ लिखी हुई तो श्रीहर्ष की ही हैं, पर उनके आज्ञानुसार बाणभट्ट ने उनमें कुछ परिवर्तन किए और एक श्लोक में अपना नाम 'दक्ष' भी कुशलता के साथ जोड़ दिया। यह सम्भावना इतिहासविरोधी नहीं है। पर बाणभट्ट के तीन पात्र, तुवर मिलिन्द, लोरिकदेव और ईश्वरसेन हमारे इतिहास बोध को चुनौती देते प्रतीत होते हैं। उपन्यास के उपसंहार में 'व्योमकेश शास्त्री' ने ऐतिहासिक दृष्टि से तुवर मिलिन्द को एक 'समस्या' बताया है। पर, उपन्यास में यह 'समस्या' द्विवेदी जी की ही खड़ी की हुई है। इतिहास ग्रन्थों में इस नाम का कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं मिलता। बौद्ध साहित्य में मिलिन्दपन्हो नाम का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ मिलता है जिसमें यवन राजा मिलिन्द और बौद्ध भिक्षु नागसेन के बीच प्रश्न और उत्तर के रूप में बौद्ध दर्शन और धर्म की विवेचना की गयी है। मिलिन्द की पहचान भारतीय यवन (यूनानी) राजा मिनांडर से की गयी है। मिनांडर का शासन काल 160 ई.पू. से 140 ई.पू. तक था और उसकी प्रसिद्धि एक शक्तिशाली राजा के रूप में थी। विश्वास किया जाता है कि मिनांडर ने बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया था।

पर बाणभट्ट की आत्मकथा के तुवर मिलिन्द से मिनांडर या मिलिन्द का सम्बन्ध स्थापित करना इसलिए कठिन प्रतीत होता है कि हर्षवर्द्धन और मिनांडर के शासनकाल के बीच लगभग आठ शताब्दियों का अन्तराल है। मिलिन्द के साथ संलग्न 'तुवर' शब्द भी एक पहेली है। संस्कृत में 'तुवर' शब्द का अर्थ 'दाढ़ी-मूँछ रहित' होता है। यूनानी राजा प्रायः दाढ़ी-मूँछ नहीं रखते थे। सम्भव है, मिनांडर के लिए 'दाढ़ी-मूँछ रहित मिलिन्द' (तुवर मिलिन्द) पद उपन्यासकार द्वारा गढ़ा गया हो। पर यह अनुमान ही अनुमान है। सम्भव है, नाम विषयक यह गुत्थी भविष्य में किसी और रूप में सुलझे !

ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रश्न बना ही रह जाता है कि बाणभट्ट की आत्मकथा का तुवर मिलिन्द कौन है? उपन्यास में विभिन्न स्थानों पर आए उल्लेखों से ज्ञात होता है कि तुवर मिलिन्द भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर स्थित किसी राज्य का शक्तिशाली नरेश है। एक स्थान पर भट्टिनी कहती है : 'मेरा जन्म रोमकपत्तन के उत्तरी अस्त्रियवर्ष (आस्ट्रिया?) में हुआ था। मैं वहाँ से पुरुषपुर तक पिता की गोद में बड़ी हुई हूँ।' (पृ. 291) 'व्योम' (स्वयं लेखक) एक स्थान पर भट्टिनी को 'अस्त्रियवर्ष की यवनकुमारी' कहता है। (पृ. 332) इससे यह तो स्पष्ट है कि तुवर मिलिन्द 'यवन' है। प्राचीन काल में यूनानियों के लिए 'यवन' शब्द का इस्तेमाल होता था। तुवर मिलिन्द यवन होने के साथ साथ हूँ का शत्रु तथा देवमन्दिरों और विहारों का रक्षक भी है। उसके नाम में 'देवपुत्र' विरुद्ध जुड़े होने से उसके कुषाण होने का संकेत मिलता है। कुषाण राजाओं के नाम के साथ 'देवपुत्र' विरुद्ध का प्रयोग होता था।

कुषाण राजा यों तो बौद्ध थे, पर ब्राह्मण धर्म से भी उनका विरोध न था। अतः तुवर मिलिन्द के कुषाण होने का अनुमान किया जा सकता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से एक कठिनाई यह भी है कि प्राचीन भारत के इतिहास ग्रन्थों में हर्षवर्द्धन के राज्यारोहण के समय अथवा उसके कुछ पूर्व, भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर इस नाम के किसी प्रतापी राजा का उल्लेख नहीं मिलता। ईसा की दूसरी शताब्दी के अन्तिम चरण में भारशिव नाग राजाओं ने उत्तरी भारत से कुषाण राजाओं को मार भगाया था। पर कुषाण साम्राज्य में अफगानिस्तान बैक्ट्रिया, काशगर, खोतान, यारकन्द जैसे दूरस्थ क्षेत्र भी शामिल थे। कुषाण साम्राज्य की राजधानी पुरुषपुर या पेशावर थी, जो उपन्यास के तुवर मिलिन्द की भी राजधानी है। इतिहासकारों का अनुमान है कि अन्तिम कुषाण राजा वासुदेव के अधिकार से उत्तर-पश्चिम के इलाके निकल गये थे। पर कुषाणों की एक शाखा ने, जिसे 'किदार कुषाण' कहते हैं, काबुल की घाटी और उसके आसपास के क्षेत्रों में अपना आधिपत्य कायम कर लिया था और हूणों के लगातार आक्रमणों के बावजूद वे ईसा की नवीं शताब्दी के मध्य तक अपना अस्तित्व बनाए हुए थे।

बाणभट्ट की आत्मकथा का ऐतिहासिक दृष्टि से दूसरा सन्दिग्ध चरित्र आभीर सामन्त लोरिकदेव है जो गंगा और महासरयू के संगम पर स्थित भद्रेश्वर दुर्ग का शासक है। लोरिकदेव के बारे में इतिहास मौन है, यद्यपि किंवदन्तियों और लोक साहित्य का वह प्रसिद्ध नायक है। यदि लोरिकदेव कोई ऐतिहासिक व्यक्ति रहा भी हो तो उसका काल अनिश्चित है। वह एक काल्पनिक पात्र है। उसे एक जीवन्त पात्र के रूप में प्रस्तुत कर द्विवेदी जी ने औपन्यासिक सर्जनशीलता का बेहतर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

जहाँ तक ईश्वरसेन का प्रश्न है, बाणभट्ट की आत्मकथा में उसे व्याघ्रसर के आसपास के क्षेत्र का सामन्त बताया गया है। व्याघ्रसर आज का बक्सर है। पर हर्षवर्द्धन के काल में यहाँ किसी आभीर सामन्त ईश्वरसेन का आधिपत्य या प्रभाव था, यह ऐतिहासिक दृष्टि से सन्दिग्ध है। ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार तृतीय शताब्दी के अन्त में ईश्वरसेन नामक किसी आभीर सामन्त ने सातवाहनों से उत्तरी महाराष्ट्र के हिस्सों को छीन लिया था। सातवीं शताब्दी में बक्सर के आसपास किसी ईश्वरसेन की कल्पना विवादास्पद है।

बाणभट्ट की आत्मकथा में आया एक और उल्लेख ऐतिहासिक दृष्टि से असंगत जान पड़ता है। भट्टिनी और बाणभट्ट की सुरक्षा में नियुक्त मौखरी सैनिकों का सरदार विश्वहर्मा अपने को 'प्रतापी' यशोवर्मा का सेवक कहता है। बाणभट्ट भी स्वयं को 'प्रतापी यशोवर्मा की विमल कीर्ति' से परिचित बताता है। पर इतिहास ग्रन्थों के अनुसार मौखरी नरेश यशोवर्मा हर्षवर्द्धन के बाद हुआ था न कि पहले ! उसका शासनकाल लगभग 725-752 ई. माना जाता है। यशोधर्मा नाम का एक राजा मालवा में जरूर हुआ था, जिसने 532-33 ई. के पूर्व हूणों को गहरी शिकस्त दी थी।

पर उपन्यास में इन ऐतिहासिक पात्रों का उतना महत्व नहीं है, जितना काल्पनिक पात्रों का। ये पात्र ऐतिहासिक हैं या अनेतिहासिक, यह बहुत महत्व की बात नहीं है। द्विवेदी जी ने निजन्धरी कोटि के पात्रों, जैसे तुवर मिलिन्द, लोरिकदेव, ईश्वरसेन आदि पात्रों के सम्बन्ध में इतिहास को कम महत्व दिया है। और यह तो स्मरणीय है ही कि इनका जो चरित्र निर्मित किया गया है, वह कल्पनाप्रसूत और लेखकीय अनुभव तथा संवेदना पर आश्रित है। बाणभट्ट की आत्मकथा में विशुद्ध रूप से कल्पनाप्रसूत पात्रों में भट्टिनी, निपुणिका, सुचरिता, महामाया, भैरवी, गणिका मदनश्री, साधिका चंडमंडना, नर्तकी चारुस्मिता आदि स्त्री पात्र और अघोरभैरव, विरतिवज्र, अमोघवज्र, चंडीमंडप का पुजारी, सेठ धनदत्त, आचार्य सुगतभद्र,

विग्रहवर्मा, साधक अघोरघंट, आचार्य वेंकटेश भट्ट, आचार्य मेघातिथि आदि पुरुष पात्र उल्लेखनीय हैं। कहना नहीं होगा कि इन पात्रों के निर्माण में उपन्यासकार का सारा अनुभव, पूरी संवेदना, अध्ययन-चिन्तन तथा असाधारण सर्जनात्मक क्षमता साकार हो गयी है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' को एक कालजयी, विदग्ध और अत्यधिक प्रासंगिक उपन्यास बनाने का श्रेय उपर्युक्त काल्पनिक पात्रों को ही है। द्विवेदी जी की सर्जनात्मक कल्पना इन पात्रों के माध्यम से ही गति और दिशा प्राप्त करती है। यही वह आलम्बन है, जहाँ उपन्यासकार ने अपरिमित छूट ली है और अपने व्यापक 'विजन' के तहत पूरी तरह ऐतिहासिक यथार्थ की रक्षा करते हुए समकालीन यथार्थ और अपेक्षाओं को भी खुलकर व्यक्त किया है। नारी मुक्ति की आवश्यकता, नारी-पुरुष की समानता, जातीय विषमता पर प्रहार, कर्मकाण्ड जनित मिथ्या रूढ़ियों का विरोध, स्वाधीनता आंदोलन के लिए ऊँच-नीच में विभाजित देश के सहस्राधिक स्तरों की एकता की अनिवार्यता को इन्हीं पात्रों द्वारा रेखांकित किया गया है। भट्टिनी, महामाया भैरवी, अघोर भैरव, सुचरिता आदि पात्र जाति-पात, छुआछूत, ऊँच-नीच के सामाजिक विभाजन को स्थान-स्थान पर देश के अस्तित्व की रक्षा, अखण्डता और एकता में बाधा उत्पन्न करने वाली प्रवृत्तियों का खुलकर विरोध करते हैं। यह कार्य ऐतिहासिक पात्रों द्वारा संभव नहीं था। अपने युग की इस ज्वलन्त समस्या को आचार्य द्विवेदी ने इन्हीं काल्पनिक पात्रों द्वारा सुलझाने का सार्थक प्रयास किया है।

यही नहीं, इन काल्पनिक पात्रों द्वारा कालदोष के प्रति पूरी तरह सतर्क रहते हुए स्वस्थ भारतीय जीवन दृष्टि और सर्वोच्च सांस्कृतिक आदर्शों की भी नवीन व्याख्या कर द्विवेदी जी ने युगानुकूल आदर्शों की प्रतिष्ठा का भी सफल प्रयास किया है। प्राचीन के साथ नवीन का यह प्रगतिशील मिश्रण काल्पनिक पात्रों, घटनाओं, स्थितियों द्वारा ही संभव हो पाया है। पाठक को प्राचीनता के भ्रमयुक्त मोह से निकाल कर नवीन युग में प्रवेश कराने का श्रेय भी द्विवेदी जी की 'विजन' संयुक्त कल्पना को ही जाता है। इसे इतिहास का वर्तमान के लिए सही उपयोग का एक ठोस नमूना माना जा सकता है। यही इस उपन्यास की सार्थकता है, जो आचार्य द्विवेदी द्वारा दूसरी परम्परा की खोज भी है।

12.5 सारांश

सारांश के रूप में कहा जा सकता है कि यद्यपि बाणभट्ट की आत्मकथा का कथासंसार पाठक को बाणभट्ट की 'आत्मकथा' के रूप में ही उपलब्ध होता है, पर वस्तुतः यह न तो हर्षचरित के लेखक बाणभट्ट की 'आत्मकथा' है न ही मिस कैथराइन के अज्ञात कविप्रेमी की। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें उपन्यासकार (ह.प्र.द्विवेदी) का इतिहासबोध, प्रेम दर्शन और प्रेमानुभूति इतिहास, कल्पित कथाओं और कल्पना के योग से निर्मित एक मुकम्मल, सुगठित और मार्मिक प्रसंगों से भरी कथा के रूप में अभिव्यक्त हुई है। इस कथासंसार को विश्वसनीय बनाने के लिए, जो उपन्यास की एक अनिवार्य शर्त है, 'आत्मकथा' का शिल्प अपनाया गया है और उस शिल्प की दरारों को भरने के लिए आत्मकथा के भीतर आत्मकथा, मुख्य पात्र के अन्तःकरण और मस्तिष्क में प्रवेश, मुख्य पात्र से अन्य पात्रों के संवाद तथा विभिन्न पात्रों से प्राप्त सूचनाओं आदि की सहायता ली गयी है। कथा के बिखरे हुए सूत्रों को जोड़ने में भी कथाकार ने अद्भुत कौशल का परिचय दिया है। इस प्रकार उपन्यास में आत्मकथा की प्रविधिमात्र अपनायी गयी है, यह किसी की 'आत्मकथा' नहीं है, और यदि किसी की आत्मकथा का कोई अंश उपन्यास में है, तो वह स्वयं उपन्यासकार ही है।

बाणभट्ट की आत्मकथा प्रेम और साहसिक अभियान युक्त होने पर भी अपने पारिभाषिक अर्थ में रोमांस नहीं है। यह एक उपन्यास है जिसमें लेखक की संवेदना, चिन्तन, जीवन का

अनुभव, यथार्थ के प्रति आग्रह और मूल्यबोध प्रमुख स्थान रखता है। इन तथ्यों के बावजूद 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में रोमानियत का अभाव अवश्य मिलता है। रोमांस के तत्वों के समावेश के कारण इस उपन्यास में रमणीयता की वृद्धि हुई है। अतः कहा जा सकता है कि उपन्यास होते हुए भी 'बाणभट्ट की आत्मकथा' रोमानी तत्वों से भरपूर एक विशिष्ट उपन्यास है।

बाणभट्ट की आत्मकथा में इतिहास और कल्पना का बहुत सर्जनात्मक मिश्रण किया गया है। उपन्यास में इतिहास को उतना महत्व नहीं मिला है, जितना ऐतिहासिक यथार्थ को। उपन्यासकार की कल्पना 'इतिहास' से नियन्त्रित होती हुई भी उसका अतिक्रमण करती है। इसमें सन्देह नहीं कि बाणभट्ट की आत्मकथा ने हिन्दी में 'ऐतिहासिक उपन्यास' को एक नयी दिशा प्रदान की।

12.6 अभ्यास / प्रश्न

- 1) 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की आत्मकथात्मकता पर विस्तार से प्रकाश डाले।
- 2) 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में रोमांस का किस मात्रा में सम्मिश्रण हुआ है - स्पष्ट करें।
- 3) रोमांस और उपन्यास के अंतर को स्पष्ट करते हुए सिद्ध करें कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' रोमांस है या उपन्यास।
- 4) बाणभट्ट की आत्मकथा में कल्पना के उपयोग द्वारा रचना का सौंदर्य और ऐतिहासिक यथार्थ में बाधा उत्पन्न नहीं हुई है - स्पष्ट कीजिए।
- 5) नारी-मुक्ति की आवश्यकता और जातीय विषमता पर प्रहार करने हेतु बाणभट्ट की आत्मकथा में द्विवेदी जी ने कौन से पात्रों का निर्माण किया है?

इकाई 13 बाणभट्ट की आत्मकथा की प्रासंगिकता

इकाई की रूपरेखा

- 13.0 उद्देश्य
 - 13.1 प्रस्तावना
 - 13.2 प्रासंगिकता
 - 13.3 प्रेम संबंधी दृष्टिकोण
 - 13.4 सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ
 - 13.5 नारी चेतना के स्वर
 - 13.6 मानवता की प्रतिष्ठा
 - 13.7 राज्याश्रय और कवि-कलाकार की स्थिति
 - 13.8 धार्मिक वर्चस्व
 - 13.9 सारांश
 - 13.10 प्रश्न/ अभ्यास
- इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

13.0 उद्देश्य

इस इकाई से पूर्व ग्यारह और बारह क्रमांक की इकाइयों में आपने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का अध्ययन किया है। इन इकाइयों में उपन्यास के कथ्य और शिल्प के अनेक पहलुओं पर विस्तार से विचार किया गया है। इस प्रक्रिया में उपन्यास के साथ ही उसमें व्यक्त उपन्यासकार की जीवन-दृष्टि इतिहास बोध समसामयिकता बोध का परिचय भी आपको मिल चुका है। इस इकाई में बाणभट्ट की आत्मकथा की समकालीन प्रासंगिकता पर वर्तमान युग की विभिन्न समस्याओं के संदर्भ में विचार किया जाएगा। जिस समय यह रचना लिखी जा रही थी, वह भारत की परतंत्रता का काल था। देश का स्वाधीनता के लिए घनघोर संघर्ष चल रहा था। इस संघर्ष से किनारा कर देश के साथ विश्वासघात करने वाले अनेक समुदाय ब्रिटिश शासनतंत्र से मिल गए थे देश की बहुसंख्यक दलित-उत्पीड़ित जनता आजादी के प्रति उदासीन थी। जातिभेद, वर्गभेद, संप्रदायभेद देश की जनता की एकता में बाधक हो रहा था। इन सारी स्थितियों को सांकेतिक रूप से समेटते हुए उपन्यासकार ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' को समसामयिक महत्वपूर्ण आंदोलनों से जोड़ा है। आइए अब हम कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों से आपका परिचय कराएँ। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- समसामयिक सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ को जान सकेंगे,
- नारी-चेतना के स्वर को पहचान सकेंगे,
- मानवता की प्रतिष्ठा के महत्व को समझ सकेंगे,
- राज्याश्रय और कवि-कलाकार की स्थिति पर प्रकाश डाल सकेंगे, और
- धार्मिक वर्चस्व के कारण बिखरते मानवीय मूल्य और सामाजिक संबंधों के टूटने की प्रक्रिया समझ सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

हजारी प्रसाद द्विवेदी एक ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में जाने जाते हैं। 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'पुनर्नवा', 'चारूचन्द्रलेख' और 'अनामदास का पोथा' जैसे उपन्यास हजारी प्रसाद

द्विवेदी की कलात्मक क्षमता का प्रमाण हैं। उनके इन उपन्यासों की कथा ऐतिहासिक व पौराणिक है। लेकिन वे सिर्फ ऐतिहासिक-पौराणिक आख्यान बनकर नहीं रह गए हैं। इनमें अपने समय और समाज का सच बोलता दिखाई देता है। यही सामाजिक यथार्थ हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों को समकालीन बनाता है।

‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ सन् 1946 में प्रकाशित हुई। इसमें मध्यकालीन इतिहास के एक छोटे-से कालखण्ड को आधार बनाया गया है। सातवीं शताब्दी का इतिहास और समाज इस उपन्यास में जीवंत हो उठा है। उपन्यास के केंद्र में है बाणभट्ट का जीवन, जो राष्ट्रीय अस्मिता की प्रतीक देवपुत्र तुवरमिलिन्द की कन्या भट्टिनी की मुक्ति का महत् उद्देश्य लेकर आगे बढ़ता है। वह एक ओर भट्टिनी की मुक्ति की संभावना को सुनिश्चित करता है तो दूसरी ओर अपनी विद्वत्ता से राजसभा में सभासद का पद भी प्राप्त करता है। भट्टिनी की मुक्ति के प्रयास में संलग्न करने वाली निपुणिका को उसका सभासद बनना स्वीकार्य नहीं है क्योंकि उसे इस बात का डर है कि राजसभा का अंग बन जाने के बाद बाणभट्ट भट्टिनी की मुक्ति के महान् उद्देश्य से भटक जाएगा याकि जनता की आशा आकांक्षाओं को पुरजोर ढंग से अभिव्यक्त करने वाला बाणभट्ट राजसत्ता के चक्कर में चाटुकारिता के चंगुल में फँस जाएगा। लेकिन बाणभट्ट अपने उद्देश्य और कर्तव्य के प्रति जागरूक है। इसलिए वह अंत तक स्त्री-मुक्ति के अभियान के प्रति प्रतिबद्ध दिखाई पड़ता है। किंतु इसके साथ ही एक बात उभरकर सामने आती है और वह है राजसत्ता से बौद्धिक वर्ग की जुड़ने की लालसा। हालांकि इस उपन्यास में एक कवि के रूप में बाण को सत्ता सुख के पीछे भागते हुए नहीं दिखाया गया है फिर भी राजसभा में उसको सभासद चुन लिए जाने के बाद बौद्धिक वर्ग का चरित्र अपने-आप उजागर हो जाता है। यहाँ वह आज के मध्यवर्गीय शिक्षित समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है जो अपनी सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखते हुए भी खुद को क्रांतिकारी और जनवादी सिद्ध करता है। इसलिए बाण को जीवित व्यक्ति पर काव्य न लिखने की चेतावनी अकारण नहीं है। प्रकारांतर से यह चेतावनी दरबारी संस्कृति से विरत रहकर अपने रचनात्मक अस्तित्व को बचाए रखने के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण लगती है। लेकिन बाणभट्ट सभासद पद स्वीकार करके आज के बुद्धिजीवी समुदाय की चारित्रिक विशेषता को उजागर कर देता है और यहीं पर यह उपन्यास समकालीनता से जुड़ जाता है। स्त्री-मुक्ति चेतना, राष्ट्रीय स्वातंत्र्य आंदोलन साम्प्रदायिक चेतना, राजनीतिक अस्थिरता, जाति-पात एवं ऊँच-नीच के भेद पर आधारित सामाजिक वैषम्य जैसे अनेक मुद्दे इस उपन्यास को समकालीन यथार्थ से जोड़ते हैं। समता की भावना और मनुष्य को सर्वोपरि सिद्ध करने की दृढ़ आकांक्षा इस उपन्यास की मूल अवधारणा है। जो इस अवधारणा को व्यापक राष्ट्रीय और सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में रूपायित करती है। इसलिए यह ऐतिहासिक के साथ ही समकालीन संदर्भों से भी जुड़कर आज के लिए भी प्रासंगिक बन जाती है।

13.2 प्रासंगिकता

किसी रचनात्मक कृति की प्रासंगिकता को समझने के लिए हमें यह देखना होगा कि वह रचना अपने समय और समाज के साथ कैसा बर्ताव करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि वही रचना सार्थक व प्रासंगिक कही जा सकती है जो अपने रचनाकाल में हो रही सामाजिक, राजनीतिक-सांस्कृतिक उथल-पुथल को प्रतिबिम्बित करने में समर्थ हो, जिसमें जनता की इच्छा-आकांक्षाओं को स्वर देने की शक्ति हो, इसके साथ ही साथ मानवीय मूल्यों के प्रति उसका सरोकार स्पष्ट हों ‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ इस दृष्टि से एक सार्थक औपन्यासिक रचना है। हर्षकालीन इतिहास से सामग्री लेकर उपन्यास की रचना की गई है। उपन्यास में सामंती समाज का चित्रण है जो ऐतिहासिक दृष्टि से उपयुक्त और प्रामाणिक लगता है। इसमें

हर्षवर्द्धन की राजसभा के विख्यात कवि बाणभट्ट के चरित्र को केंद्र में रखा गया है। भट्टिनी, निपुणिका, महामाया, सुचरिता, चारुस्मिता, विरतिवज्र, अघोर भैरव, कुमार कृष्णवर्धन जैसे अनेक पात्रों के माध्यम से कथा को विकसित किया गया है। इस उपन्यास में स्त्री-चरित्रों की भूमिका विशेष उल्लेखनीय है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि रचनाकार नारी जाति का सम्मान करता है, उसकी रचनात्मक भूमिका के प्रति गंभीर है। इस उपन्यास में तत्कालीन सामंती समाज की जड़ता के विरुद्ध नारी जाति के विद्रोह को संवेदनशीलता के साथ उभारा गया है। नारी के प्रति आदर व सम्मान की भावना, उसकी अस्मिता की रक्षा के प्रति प्रतिबद्धता और मानवीय मूल्यों की रक्षा का आह्वान इस उपन्यास के उद्देश्य को महानता प्रदान करता है। दैवी शक्ति पर मानवीय प्रेम की विजय अथवा मानवीय प्रेम को श्रेष्ठ साबित करने का प्रयास निस्संदेह इस कृति को श्रेष्ठ बनाता है। मनुष्य की जिजीविषा और उसकी इच्छा-आकांक्षाओं को इस उपन्यास में केंद्रीय महत्व मिला है। भ्रष्ट व आततायी सत्ता, मूल्य हीन समाज, राजनीतिक उथल-पुथल, धार्मिक-साम्प्रदायिक महत्वाकांक्षाओं का पारस्परिक संघर्ष, चाटुकारिता एक ओर तो, दूसरी तरफ भ्रष्ट सत्ता के खिलाफ बगावत, साम्प्रदायिक राजनीति, राष्ट्रीय सुरक्षा, परंपरागत मूल्यों का अस्वीकार जैसे अनेक महत्वपूर्ण सवाल इस उपन्यास को समकालीन संदर्भों से जोड़ते हैं। इसलिए यह रचना ऐतिहासिक आख्यान होते हुए भी वर्तमान संदर्भों में अपनी प्रासंगिकता बनाए रखती है।

‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ के लेखक ने उन सारी गलित वर्जनाओं, रूढ़ियों एवं भ्रांत धारणाओं के प्रति जनता को सचेत व सावधान किया है जिनके नीचे वह हजारों वर्षों से पिसती चली आ रही है। वेद, शास्त्र, जात-बिरादरी, गुरु, स्वर्ग, नरक, राजा, सिपाही, पटवारी से लेकर, कैलास से आंगन की तुलसी में हास करने वाले तैंतीस करोड़ देवताओं के आतंक से त्रस्त भारतीय जनमानस को ललकारते हुए वह कहता है : ‘पाषंडी! तेरे सब शास्त्र पाषण्ड सिखाते हैं, तुझे धोखा देते हैं, जो तेरे भीतर सत्य है उसे दबाने को कहते हैं : जो तेरे भीतर मोहन है उसे भूलने को कहते हैं तू जिसे पूजता है उसे छोड़ने को कहते हैं।’ इसलिए इस उपन्यास में डर का तिरस्कार करते हुए मनुष्य के अस्तित्व की प्रतिष्ठा की गई है। यहाँ इस मानव-विरोधी चिंतन का जबर्दस्त खण्डन दिखाई देता है कि मनुष्यः देह पाप का मूल है। इसके विपरीत इस मानव शरीर को लोक-कल्याण का माध्यम बताते हुए इसकी सार्थकता को स्थापित किया गया है।

‘मानव देह केवल दण्ड भोगने के लिए नहीं बनी है आर्य! यह विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि है। गुरु ने अब यह रहस्य मुझे समझा दिया है। मैं जिसे अपने जीवन का सबसे बड़ा कलुष समझती थी, वही मेरा सबसे बड़ा सत्य है!’ प्रवृत्तियों को छिपाना, उनसे डरना या लज्जित होना उचित नहीं है। बल्कि मनुष्य-धर्म का पालन ही बृहत्तर मानव-समाज के हित में है। शायद इसीलिए इस उपन्यास में गृहस्थ जीवन की उपयोगिता पर ज्यादा बल दिया गया है। क्योंकि इसमें मानव कल्याण की असीम संभावनाएँ छिपी होती हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि यह जीवन मनुष्य को उसके अस्तित्व और उपयोगिता का बोध कराता है।

‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ कबीर के अनभय साँचा’ को जीवन-दृष्टि के रूप में स्वीकार करती है।

‘किसी से भी न डरना, गुरु से भी नहीं, मंत्र से भी नहीं, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं।’ बाबा बाणभट्ट को जीवन का यह मूलमंत्र देते हुए कहना चाहते हैं कि इस चराचर जगत् में कोई अंतिम सत्य नहीं है। वेद-शास्त्र समय की गति से नहीं बदलते इसलिए वे अप्रासंगिक हो जाते हैं। किसी व्यक्ति के प्रति अंध आस्था भी उचित नहीं होती चाहे वह गुरु ही क्यों न हो। जहाँ तक आस्था और विश्वास की बात है, वह मनुष्यता के प्रति होनी

चाहिए। सबसे बड़ा खतरा इस मनुष्यता के ऊपर ही दिखाई देता है। इसीलिए आचार्य वसुभूति का यह कथन बहुत प्रासंगिक लगता है--

‘क्या ब्राह्मण और क्या श्रमण, मनुष्यता दोनों ही जगह विरल है कुमार।’

इसमें तनिक संदेह नहीं है कि साम्प्रदायिक मतवादों और विधि-विधानों ने मनुष्य को उसके लक्ष्य और प्रकृति से बहुत हद तक परे धकेल दिया है। ‘सत्य वह होता है जिससे लोक का आत्यंतिक कल्याण होता है।’ लेकिन मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत लोक-कल्याण के व्यापक लक्ष्य से भटक जाता है। इस उपन्यास में स्वार्थपरता के विरुद्ध लोक कल्याण की भावना को महत्व दिया गया है। ‘राज्य-गठन, सैन्य संचालन, मठस्थापन और निर्जनवास पुरुष की समताहीन, मर्यादाहीन, श्रृंखलाहीन महत्वाकांक्षा के ही परिणाम हैं।’ कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक पुरुष स्त्री की इच्छा-आकांक्षा का सम्मान करना नहीं सीखेगा तब तक दुनिया में दुर्द्धर्ष संघर्ष होते रहेंगे। स्त्री का सहयोग और उसके साथ समानता की भावना से इन अमानवीयताओं पर अंकुश लगता है क्योंकि स्त्री शक्ति और प्रकृति का प्रतीक है। वह पुरुष को मानव-कल्याण के उच्चतर मूल्यों की ओर ले जाने में समर्थ होती है।

13.3 प्रेम संबंधी दृष्टिकोण

‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ में प्रेम को उच्च भाव भूमि पर प्रतिष्ठा मिली है। बाणभट्ट कहता है कि, ‘मैं स्त्री-पुरुष को देव-मंदिर के समान पवित्र मानता हूँ।’ वह नारी को विलास की नहीं, करुणा की मूर्ति मानता है। यहाँ प्रेम देह-कामना से बहुत हद तक निरपेक्ष है। भट्टिनी और बाण दोनों ही प्रेम को शारीरिक तृप्ति का माध्यम नहीं बनने देते। इसीलिए प्रेमास्पद पर एकाधिकार की वह कामना यहाँ दिखाई नहीं देती जो विकारों को पल्लवित करती है। भट्टिनी एवं भट्ट का प्रेम अक्षुण्ण बना रहता है। दरअसल, प्रेम का यह लोकोत्तर चरित्र है जिसमें विश्व की कल्याण भावना निहित है। ‘मैं ऐसा काव्य लिखता कि युग-युग तक इस पवित्र आर्यभूमि में नारी-सौंदर्य की पूजा होती रहती और इस पवित्र देव-प्रतिमा को अपमानित करने का साहस किसी को न होता।’ अघोर भैरव ने कहा था कि भट्ट पशु नहीं है अर्थात् उसकी वृत्तियाँ पशुवत् नहीं हैं। वैसे भी, प्रेम शरीरी होकर भी मानव-जगत् में ही स्थायित्व पाता है। दैहिक तृप्ति प्रेम की गहराई नहीं है। वह प्रेम को स्थायित्व नहीं दे सकती। भट्ट और भट्टिनी का प्रेम रोमानीपन को छूता हुआ दिखाई देता है। भट्ट लावण्य और माधुर्य को देखता है। उसका प्रेम व्यापक सामाजिक सरोकार से जुड़ जाता है। प्रेम और सौंदर्य की सार्थकता उसके रचनात्मक होने में है। भट्टिनी का प्रेम और सौंदर्य पूरी तरह रचनात्मक हैं। यही कारण है कि भट्टिनी के प्रति भट्ट का प्रेम आर्यावर्त के उद्धार का महान् लक्ष्य लेकर अग्रसर होता है जिसमें स्त्री जाति की शुचिता और सुरक्षा का भाव निहित है। यह रचनाकार की उदात्त दृष्टि का प्रमाण है कि उसने बाणभट्ट के प्रेम की वैयक्तिक सार्थकता को लोक की सार्थकता के साथ जोड़ दिया है और उसे एक उच्च आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है। इसलिए प्रेम का यह स्वरूप एकनिष्ठ होते हुए भी सामाजिक है।

बाणभट्ट और भट्टिनी के प्रेम को देवोपम बनाने का एक उद्देश्य यह भी रहा है कि लेखक नारी के प्रति सामंती दृष्टि को बदलना चाहता है। सम्राटों और सामंतों के अंतःपुर में बंधक की तरह रखी जाने वाली अपहृता स्त्रियों की पीड़ा भट्टिनी के माध्यम से व्यक्त हुई है। इस पीड़ा का एक कारण यह भी है कि ये अपहृता स्त्रियाँ पराधीन होती हैं और अंतःपुर का समूचा कार्य-व्यापार वासनाजन्य दंभ, पौरुष और प्रमाद का कारण स्वरूप होता है। व्यक्ति स्वातंत्र्य का निषेध एवं सौंदर्य का नितांत शरीरी रूप प्रधान होता है। मानवीय प्रवृत्तियों का दमन सामंती दमन का ही एक रूप है। अमानवीकरण की यह प्रक्रिया शासक वर्गों के दमन

का प्रमुख अस्त्र रही है। सामंती युग में इस दमनकार्य के लिए शासक वर्ग धर्म का सहारा लेता था और आधुनिक पूँजीवादी युग में धर्म के अतिरिक्त वैज्ञानिक-नैतिक-व्यावहारिक नीतिशास्त्र का भी। हजारी प्रसाद द्विवेदी स्त्री के इस सामंती पूँजीवादी रूप को अस्वीकार करते हुए उसे उच्च आदर्श भूमि पर स्थापित करते हैं। वह नारी के उस रूप को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं जो कम से कम इतना देवोपम हो कि उसकी मर्यादा भंग करने का कोई नैतिक साहस न कर सके। संभवतः इसलिए भी भट्टिनी के प्रेम को इतना महनीय एवं गौरवशाली रूप प्रदान किया गया है। भट्टिनी अपने हृदय का प्रेमोद्गार व्यक्त करते हुए कहती हैं - 'तुम नहीं जानते कि तुमने मेरे इस पापमय शरीर में कैसा प्रफुल्ल शतदल खिला रखा है। तुम मेरे देवता हो, मैं तुम्हारा नाम जपने वाली अधम नारी।' हजारी प्रसाद द्विवेदी की प्रतिभा का अकुंठ विलास इसी रागात्मक हृदय का साक्षात्कार है। उन्होंने स्त्री के प्रति सामंती दृष्टि के स्थान पर मानवीय दृष्टि का संधान किया है। भट्टिनी के प्रति भट्ट के प्रेम की प्रासंगिकता को इसी रूप में देखा जा सकता है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भट्ट, भट्टिनी और निपुणिका का जो प्रेम-त्रिकोण लक्षित हुआ है वह निपुणिका के चरित्र को गहराई से समझने की माँग करता है। जहाँ भट्ट और भट्टिनी के प्रेम में एक प्रकार का रोमानी आदर्शवाद झलकता है, वहीं निपुणिका का भट्ट के प्रति प्रेम नितांत मानवीय रूप में प्रकट हुआ है। हालाँकि शारीरिक तृप्ति की माँग यहाँ भी कोई रूप नहीं ग्रहण करती फिर भी भट्टिनी की अपेक्षा निपुणिका के प्रेम में मुखरता अधिक है। छः वर्ष की निरंतर भटकन और कुटिल जगत् की खट्टी-मीठी यादों को सँजोए निपुणिका का प्रेम भक्ति में रूपांतरित हो जाता है। समाज में नीच समझी जाने वाली जाति से सम्बद्ध निपुणिका का अनुभव संसार भट्टिनी की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक है। अवहेलना, प्रताड़ना और कुत्सित रुचि के अनेक अनुभवों से गुजर कर वह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि स्त्री होना ही सारे अनर्थों की जड़ है। यह, समाज में स्त्री के प्रति सोच का प्रमाण है। निरर्थकता बोध और आत्महीनता की मनोभूमि पर स्थित नारी के मन में नारी-शरीर को देवमंदिर समझने वाले उच्च कुलोत्पन्न बाणभट्ट के प्रति विश्वास का भाव प्रकट हो जाना स्वाभाविक है। वह बाण के सहज एवं समतामूलक व्यवहार से कृतज्ञता का अनुभव करती है। निपुणिका साधारण नारी है, भट्टिनी असाधारण। विषम परिस्थितियों से गुजरने के बाद भी भट्टिनी का आभिजात्य जीवित रहता है। निउनिया अभिशप्त वर्ग की नारी है। इसलिए बाणभट्ट के सहज मानवीय व्यवहार से उसमें साहस और विश्वास का संचार होता है। वह अपने विकारों को दबा नहीं पाती। वह उन्हीं के सहारे बाण के प्रेम को प्राप्त करना चाहती है। 'मैं तुम्हारा करावलम्ब चाहती हूँ। नारी का जन्म पाकर केवल लाँछन पाना ही सार नहीं है। तुमने ही मुझे आनंद की ज्योतिष्कणिका दी थी। तुम्हीं मुझे तेज की चिनगारी दो आर्य।' इस तेज की चिनगारी का एक निहितार्थ है। उसके मन में सामंती शोषण और दमन के विरुद्ध घोर प्रतिशोध का भाव है। बाणभट्ट का सान्निध्य उसे सामंती अत्याचार के विरुद्ध लड़ने की शक्ति देगा, ऐसी संभावना निपुणिका के उपर्युक्त कथन में झलकती है।

जहाँ तक निपुणिका के प्रेम का संबंध है वह बाण के प्रति तमाम श्रद्धा और भक्ति के बावजूद सामाजिक समता के धरातल पर ही उपस्थित हुआ है। निपुणिका नापित (नाई) जाति की कन्या है और बाणभट्ट ब्राह्मण जाति का है। इन दोनों में प्रेम और समानता का भाव दिखाकर उपन्यासकार ने अपने युग की अपेक्षाओं को चरितार्थ किया है। भट्टिनी के प्रेम की अपेक्षा यह ज्यादा वास्तविक, पार्थिव व मानवीय है। उसमें वासना तो नहीं है किंतु देह कामना का नितांत अभाव भी नहीं दिखाई देता। निपुणिका का यह कथन द्रष्टव्य है

'निर्दय, तुमने बहुत बार बताया था कि तुम नारी:देह को देव मंदिर के समान पवित्र मानते हो, पर एक बार भी तुमने समझा होता कि यह मंदिर हाड़-मांस का है, ईंट चूने का नहीं।

जिस क्षण मैं अपना सर्वस्व लेकर इस आशा से तुम्हारी ओर बढ़ी थी कि तुम उसे स्वीकार कर लोगे, उसी समय तुमने मेरी आत्मा को धूलिसात् कर दिया। उस दिन मेरा निश्चित विश्वास हो गया कि तुम जड़-पाषाण पिंड हो, तुम्हारे भीतर न देवता है, न पशु है, है एक अडिग जड़ता।'

दरअसल, निपुणिका का प्रेम पूरी तरह से मानवीय संवेदना से युक्त है। ऐसे में वह अपने प्रेमास्पद से नितांत मानवीय स्तर का प्रेम चाहती है लेकिन इस मामले में बाण की दृष्टि बिल्कुल साफ है और वह निपुणिका के बढ़े हुए कदम को यकायक रोक देता है। भट्टिनी और बाण का प्रेम मौन और निगूढ़ है। सुसूचि, संयम और मर्यादा का उत्लंघन तो निपुणिका भी नहीं करती किंतु ऐसा गोपन भाव उसके यहाँ नहीं है।

निपुणिका और बाणभट्ट के प्रेम का महत्व इस बात में है कि यह दलित और ब्राह्मण के प्रेम का समर्थन करता है। बाणभट्ट दलितों में लक्षित होने वाली मानवीयता का समर्थन करता है इसीलिए वह निपुणिका को प्रेम का पात्र समझता है। तात्पर्य यह है कि बाणभट्ट परंपरागत रुढ़िवादी मूल्यों को अस्वीकार करते हुए दलितों की मनुष्यता को जिस ऊँचाई तक ले जाता है वह एक ओर तो तत्कालीन सामंती समाज व्यवस्था का अतिक्रमण है तो दूसरी तरफ वर्तमान के लिए उच्च मानवीय मूल्यों की स्थापना का प्रयास। इस प्रेम-संबंध की सार्थकता आज भी उतनी ही है जैसी बाणभट्ट के जीवन काल में थी। कहना न होगा कि प्रेम का यह स्वरूप हृदय के सत्य को सर्वोपरि मानते हुए ही प्राप्त किया जा सकता है! जहाँ समता, न्याय और आदर की भावना हो, वहीं इस प्रेम की संभावना की तलाश की जा सकती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बाणभट्ट के चरित्र को इस लिहाज से गढ़ा है कि उसके हृदय में राजा और रंक, ब्राह्मण और शूद्र सभी के प्रेम को समाहित किया जा सके। यह आज की सामाजिक समता का ज्वलंत मुद्दा बन गया है। यह अकारण नहीं है कि समाज के उपेक्षित वर्ग से आयी हुई निपुणिका बाण के अप्रत्याशित प्रेम-व्यवहार से कृत कृत्य हो जाती है और उसे अपना हृदय दे बैठती है। बाण और निपुणिका का प्रेम लोक के विरूद्ध हृदय की रागात्मक वृत्ति की विजय का प्रतीक है।

13.4 सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक स्थितियों का चित्रण बहुत ही सांकेतिक और बारीक ढंग से हुआ है। राजकुलों के अंतःपुर के यथार्थ को बाणभट्ट के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया गया है।

'मुझे स्थाणीश्वर के लम्पट राजकुल के अंतःपुर के विषय में श्रद्धा नहीं है। जहाँ चौर्यलब्ध अत्याचारिता वधुएँ वास करती हैं, उस अंतःपुर की कोई मर्यादा नहीं होनी चाहिए।' यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उपन्यास जिस कालखण्ड को आधार मानकर चलता है, उस समय और समाज में स्त्री को भोग्या और दासी ही माना जाता था। उसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं थी। एक मनुष्य के प्रेम में कोई पहचान नहीं थी बल्कि वह एक वस्तु के रूप में उपयोग में लायी जाती थी। कहना न होगा कि स्त्री के प्रति यह दृष्टि सामंती समाज की कोख से उत्पन्न हुई थी। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भी यह सामंती समाज अपने पूरे वजूद के साथ मौजूद है। यह अकारण नहीं है कि सामंती राजसत्ता के विरूद्ध संघर्ष करने वालों में स्त्रियों की भूमिका सर्वाधिक महत्व रखती है। निपुणिका, महामाया, सुचरिता भ्रष्ट राजसत्ता के विरूद्ध सबसे आगे बढ़कर हैं और यह कहना गलत नहीं होगा कि ये स्त्री चरित्र ही सामंती सत्ता के विरूद्ध संघर्ष का नेतृत्व करते हैं। इन नारी पात्रों की संघर्ष चेतना के पीछे इतिहास

और वर्तमान की भयानक भूलें छिपी हुई हैं। पुरुष ने अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन स्त्रीसत्ता का मूल्य चुकाकर ही किया है। लम्पट राजकुलों के अंतःपुर में बंधक बनाकर रखी जाने वाली स्त्रियाँ ही तो हैं। पुरुष को जब भी अपने पौरुष का प्रदर्शन करने की जरूरत महसूस हुई, उसने स्त्री की मर्यादा का ही हनन किया। इस संदर्भ में महामाया का यह कहना सर्वथा उचित जान पड़ता है कि, 'आर्य विरतिवज्र और आयुष्मती सुचरिता को बंदी बनाना, लाख-लाख निरीह ब्राह्मणों और श्रमणों की रक्षा के लिए नहीं हुआ है, वह महाराजाधिराज और उनके किसी आश्रित सामंत की नाक बचाने के लिए हुआ है। यह पहला अन्याय नहीं है, अंतिम भी नहीं होगा। यह दुर्वह सम्पत्ति मद का चिराचरित रूप है। इसके लिए न्याय की प्रार्थना व्यर्थ है।' न्याय का संबंध संवेदना से है और संवेदनशीलता मनुष्यता की पहचान है। किंतु जब सत्ता प्रतिष्ठानों की प्रकृति पर दृष्टिपात करते हैं तो देखते हैं कि वहाँ मानवीय मूल्यों का कोई महत्व नहीं रह गया है। नैतिक पतन आदर्शहीनता और भ्रष्टाचार सर्वत्र व्याप्त हैं। ऐसे में स्त्री चेतना का महत्व बहुत बढ़ जाता है। स्त्री ही समाज की बर्बरता का पहला शिकार होती है। इसलिए इस उपन्यास में सत्ता प्रतिष्ठान के विरुद्ध स्त्री-संघर्ष का जो प्रश्न उठाया गया है वह आवश्यक और स्वाभाविक लगता है। महामाया जनमानस में अन्याय के विरुद्ध चेतना जगाते हुए कहती हैं

'धर्म की रक्षा अनुनय विनय से नहीं होती, शास्त्र वाक्यों की संगति लगाने से नहीं होती, वह होती है अपने को मिटा देने से। न्याय के लिए प्राण देना सीखो, सत्य के लिए प्राण देना सीखो, धर्म के लिए प्राण देना सीखो।' महामाया की वाणी में सामंतवाद का विरोध और जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना का आह्वान है। इसके साथ ही यहाँ यह संभावना भी व्यक्त हुई है कि जनतांत्रिक व्यवस्था में ही स्त्री और दलितों का सम्मान एवं हित सुरक्षित रह सकता है। महामाया की वाणी में राष्ट्रीय संकट की ओर संकेत किया गया है। देवमंदिरों, विहारों और स्त्री की मर्यादा को बचाए रखने के लिए मर-मिटने का आह्वान इसलिए किया गया है कि राष्ट्र की सुरक्षा और स्त्री-मर्यादा के रक्षक राजकुल विलास के पंक में डूबे हुए हैं, वासना की तृप्ति ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन गई है, ऐसे में जनता ही एकमात्र विकल्प है जो प्रत्यंत दस्युओं से राष्ट्र की रक्षा कर सके। यह एक महत्वपूर्ण सवाल है जिसकी ओर लेखक ने संकेत किया है, जो उपन्यास के रचनाकाल में भी ज्वलंत मुद्दा बना हुआ था।

13.5 नारी चेतना के स्वर

'मैं तुम्हारे देश की लाख-लाख अवमानित, लाछित और अकारण दण्डित बेटियों में से एक हूँ। कौन नहीं जानता कि इस घृणित व्यवसाय के प्रधान आश्रय सामंतों और राजाओं के अंतःपुर हैं।'

'मृत्यु का भय माया है, राजा से भय दुर्बल चित्र का विकल्प है। प्रजा ने राजा की सृष्टि की है। संघटित होकर म्लेच्छ वाहिनी का सामना करो। देवपुत्रों और महाधिराजों की आशा छोड़ो।'

महामाया के उपर्युक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सामंती शासन-व्यवस्था में नारी मात्र भोग्या बनकर रह गई थी। जीवन भर अपमान, लांछन और यातना सहने के लिए वह बाध्य थी। राजाओं और सामंतों के अंतःपुर की शोभा बढ़ाने एवं वासनापूर्ति के लिए असहाय-नारीब जनता की बहू-बेटियों को बलपूर्वक अपहृत किया जाता था। यह समस्त कार्य-व्यापार अबाध गति से इसलिए चलता था क्योंकि जनता में यह धारणा गहराई तक पैठी हुई थी कि राजा देवता का रूप होता है, उसकी शक्ति ईश्वरीय होती है। अबोध जनता इस

कारण राजाओं के कुत्सित कार्य-व्यापार का विरोध नहीं कर पाती थी। समूचा समाज जड़ था। महामाया की वाणी इस जड़ता को तोड़कर जनता में चेतना का प्रसार करने के लिए आतुर दिखाई देती है। वह इस सत्य से उसे परिचित कराती है कि राजा देवोपम नहीं है और न ही उसकी शक्तियाँ असीम व अनंत हैं। राजा प्रजा की सृष्टि है। वह चाहे तो उसके अस्तित्व को बना-बिगाड़ सकती है। जनता को संगठित होकर न सिर्फ राजाओं के आततायी शासन का विरोध करना चाहिए बल्कि बाहरी शक्तियों के आक्रमण से देश की रक्षा का गुस्तर दायित्व भी स्वीकार करना चाहिए। महामाया की यह वाणी सीधे-सीधे सामंतवाद के विरुद्ध विद्रोह का आह्वान इस उपन्यास की अन्तश्चेतना को समकालीनता से जोड़ देता है। राजा को मनुष्य-मात्र के रूप में देखने का आग्रह उपन्यास को आधुनिक जीवन दर्शन से जोड़ता है और इसलिए यह विचार आज भी उतना ही प्रासंगिक लगता है।

कान्यकुब्ज के राजा श्री हर्ष स्वयं व्यभिचारी तो नहीं हैं किंतु लम्पट शरण्य तो हैं। उनके अधीनस्थ सामंतों के अंतःपुर व्यभिचार और वासना के पंक में डूबे हुए हैं। यही कारण है कि निपुणिका कान्यकुब्जेश्वर द्वारा बाण को सभासद नियुक्त करने का विरोध करती है। 'धिक्कार है भट्ट, तुम कैसे भट्टिनी का अपमान करने पर राजी हो गए। कान्यकुब्ज का लम्पट शरण्य राजा क्या भट्टिनी के सेवक को अपना सभासद बनाने की स्पर्धा रखता है? किस बुद्धि ने तुम्हें मौखरियों की रानी का निमंत्रण देने को उत्साहित किया? धिक्कार है भट्ट, तुम अत्यंत सहज बात भी नहीं समझ सके। क्या इस पत्र को चिथड़े कर फेंक देने के लायक शक्ति भी तुम्हें नहीं थी।' निपुणिका को यह अप्रत्याशित लगता है कि जो बाणभट्ट सामंती जकड़न से स्त्री को मुक्त कराने का उच्चतर आदर्श लेकर चल रहा हो, जिसने सत्ता की इच्छा के विरुद्ध भट्टिनी को अंतःपुर से मुक्ति दिलाने में सहायक की भूमिका निभाई हो, जिस भट्ट ने दलित पीड़ित निपुणिका को मनुष्य रूप में प्रतिष्ठा देकर प्रेम का पात्र समझा हो और जो स्त्री के तृरीर को देव मंदिर समझता हो, वह कैसे उसी शासन व्यवस्था का अंग बनने के लिए तैयार हो गया? निपुणिका बाणभट्ट के इस निर्णय से अत्यंत खिन्न है इसी लिए वह उसे धिक्कारने से भी नहीं चूकती। बाणभट्ट यह अच्छी तरह जानता है कि छोटा सत्य बड़े सत्य का विरोधी नहीं होता इसलिए निपुणिका का आक्रोश उसे सही मालूम पड़ता है। 'समाज की कुत्सित रुचि पर तिल-तिल करके उसने अपने को होमा है, उसकी यह वाणी हृदयाग्नि के अतल गह्वर से निकल रही है।' भट्ट स्त्री के जीवन सत्य को समझता है इसलिए निपुणिका का आक्रोश उसे स्वीकार्य है।

विश्वास मनुष्य को बड़े से बड़ा खतरा उठाने की शक्ति देता है। महावराह विश्वास के प्रतीक हैं। भट्टिनी को विश्वास है कि जो अतल में सम्पूर्ण डूबी पृथ्वी को उबारने में समर्थ है, वह निश्चय ही उसके कष्ट को दूर करेगा। सम्पूर्ण उत्तरापथ अवरोध और जड़ता से आबद्ध था। बाणभट्ट को लगा था कि 'न जाने क्यों मुझे ऐसा लग रहा था कि नीचे से ऊपर तक सारी प्रकृति में एक अवश अवसाद की जड़िमा छापी हुई है।' इस उपन्यास में इस जड़िमा को तोड़ने का रचनात्मक प्रयास है। इस जकड़न को तोड़ने में स्त्रियाँ मुख्य भूमिका निभाती हैं। हेनरी मिलर का विश्वास है कि पुरुष के मुरदा हो जाने पर स्त्रियाँ ही उसे जिलाने का कार्य करेंगी। क्योंकि वे शक्ति हैं, त्रिपुर सुंदरी हैं, प्रकृति हैं। निपुणिका, भट्टिनी, सुचरिता और महामाया अपने-अपने ढंग से पुरुष की सुप्त चेतना को स्पंदित करती हैं। भट्ट को भट्टिनी की मुक्ति का साधन बनने में निपुणिका ने ही प्रवृत्त किया था। निपुणिका भट्ट से पूछती है, 'तुम असुर गृह में आबद्ध लक्ष्मी का उद्धार करने का साहस रखते हो? मदिरा में डूबी हुई कामधेनु को उबारना चाहते हो?' वह आगे कहती है, 'भट्ट यह अशोक वन की सीता है, तुम इसका उद्धार करके अपना जीवन सार्थक करो।' यहाँ भट्टिनी का उद्धार तो निमित्त मात्र है। वास्तव में यह सामंती अवरोध से स्त्री जाति की मुक्ति का महत् प्रयास है। इसी से देशोद्धार की कामना भी संलग्न है। इस तरह से भट्टिनी बहुत व्यापक और दुरूह उद्देश्य की प्रतीक के रूप में

चित्रित हुई हैं। भट्टिनी सम्पूर्ण जगत् में रागात्मक हृदय की व्याप्ति को स्वीकार करती हैं, जबकि महामाया बर्बरता, दुराचार और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के लिए जनता का आह्वान करती हैं। भट्टिनी महामाया के सत्य को सम्पूर्णता में स्वीकार नहीं करतीं। वे म्लेच्छ कही जाने वाली जाति के उस पहलू को जागृत करना चाहती हैं, जो उसे कोमल और संवेदनशील बना दे, जो उसे नारी का सम्मान करना सिखा दे, अर्थात् भट्टिनी हृदय परिवर्तन में विश्वास रखती हैं। उन्हें भट्ट की वाणी में इतना विश्वास है कि उनके द्वारा निर्दय लोगों में भी करुणा का संचार किया जा सकता है। लेकिन स्वयं भट्ट को इस पर विश्वास नहीं है। वह सोचता है कि जब कालिदास के काव्य से हृदय परिवर्तन संभव नहीं हुआ तो दूसरों में यह क्षमता कहाँ होगी? दरअसल, भट्ट की दृष्टि अधिक यथार्थवादी है! साहित्य हृदय परिवर्तन का माध्यम नहीं बन सकता। उसका प्रभाव अत्यंत सीमित होता है। दोस्तोवस्की ने लिखा है कि मनुष्य मूलतः बर्बर है। इसलिए महामाया का यह कहना सच लगता है कि, 'नारी-हीन तपस्या संसार की भद्दी भूल है। जहाँ कहीं अपने आपको उत्सर्ग करने की, अपने आपको खपा देने की भावना प्रधान है, वहीं नारी है।' महामाया नारी के स्थूल रूप को नहीं, बल्कि उसकी अंतः प्रकृति-संवेदना और प्रेम को उजागर करती हैं, जो पुरुष से एकात्म होकर पूर्ण मानवीय रूप ग्रहण करती है। पुरुष का यही रूप मानव समाज के लिए हितकर है। बाणभट्ट में पुरुष और नारी का ऐसा ही सामंजस्य है, जिससे वह स्त्री-शरीर को देवमंदिर समझने की दृष्टि प्राप्त करता है। वराह मिहिर कहते हैं कि, 'स्त्रियाँ ही रत्नों को भूषित करती हैं, रत्न स्त्रियों को क्या भूषित करेंगे?' तो प्रकारांतर से ये भी मनुष्य सत्ता का बोध कराना चाहते हैं। स्त्री के दुर्गम-अथाह दुख को समझना बहुत कठिन है। बाणभट्ट कहता है कि, 'स्त्री के दुख इतने गंभीर होते हैं कि उसके शब्द उसका दशमांश भी नहीं बता सकते। सहानुभूति के द्वारा ही उस मर्म वेदना का किंचित् आभास पाया जा सकता है।' निस्संदेह, मनुष्य के सामाजिक संबंधों के मूल में ही इसका कारण छिपा हुआ है। शोषण, अत्याचार और अनाचार की जड़ भी यही सामाजिक विसंगति है। पुरुष की वर्चस्व भावना और श्रेष्ठता की अवधारणा ने स्त्री की चेतना को दबाकर उससे उसकी स्वायत्तता या कहें कि मनुष्यत्व का पद छीन लिया है। बाणभट्ट इसीलिए स्त्री के दुख को सम्पूर्णता में जान लेने का दावा नहीं करता। वह नारी के दुख की समस्त प्राणियों में व्याप्ति चाहता है, जिसे संवेदना के आधार पर ही संभव बनाया जा सकता है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में नारी के प्रति स्वस्थ एवं रचनात्मक दृष्टि को विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ है। कहना न होगा कि नारी के प्रति बाणभट्ट की आदर व सम्मान की भावना ने ही भट्टिनी और उसके प्रेम को एक तरह के रोमानीपन से भर दिया है लेकिन इस रोमांटिक प्रेम की शक्ति भी यही है कि यहाँ नारी जाति के प्रति सम्मान की भावना को समस्त चराचर जगत् में व्याप्त कर देने का महनीय प्रयास दिखाई देता है।

13.6 मानवता की प्रतिष्ठा

'बाणभट्ट की आत्मकथा' की प्रासंगिकता इस बात में है कि यहाँ लोक, वेद, गुरु, राजा, सामंत, श्रमण और ब्राह्मण की अपेक्षा मनुष्य मात्र की प्रतिष्ठा पर बल दिया गया है। मनुष्यता की अवधारणा के पीछे तर्क यह है कि इसमें समता और न्याय की भावना निहित होती है। किसी धर्म, सम्प्रदाय, देश, जाति में उत्पन्न होने के बावजूद यह मनुष्यता ही ऐसा तत्व है जो सभी को बराबरी के स्तर पर खींच लाता है। इस उपन्यास में इसी मानवीय प्रेम की अवधारणा को स्थापित करने का प्रयत्न दीखता है। निपुणिका दलित है और नारी भी है लेकिन लेखक उसके चारित्रिक विकास को इतने संयम और उदारता के साथ चित्रित करता है कि वह सहज ही पाठकीय संवेदना और आदर की अधिकारिणी बन जाती है। नारी शक्ति का अनादर और उपेक्षा करने वाले भूल जाते हैं कि स्त्री जाति में धैर्य, संयम, सहनशीलता के बावजूद विद्रोह

करने की क्षमता भी होती है। यही क्षमता बड़े से बड़े साम्राज्य को धूल चटा देती है।

‘महिमामयी शक्ति की उपेक्षा करने वाले साम्राज्य नष्ट हो गए हैं, मठ ध्वस्त हो गए हैं, ज्ञान और वैराग्य के जंजाल फेन-बुदबुद की भाँति क्षणभर में विलुप्त हो गए हैं।’ क्योंकि राजाओं के अंतःपुर भोग विलास के केंद्र बन गए हैं। देश और जनता की चिंता राजाओं का विषय नहीं रह गए हैं। नारी को बलपूर्वक शारीरिक तुष्टि और श्रेष्ठता और प्रदर्शन का माध्यम बनाया जा रहा है। धर्म के ठेकेदार मठाधीश आध्यात्मिक चिंतन से विरत होकर सुख और आनंद की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हो गए हैं। स्त्री-संसर्ग उनके लिए वर्जित नहीं रह गया है। मनुष्य के कल्याण की भावना उनके मन से जाती रही है। ऐसी स्थिति में विद्रोह-चेतना का प्रादुर्भाव अवश्यभावी है। जब समाज में व्यवस्था नाम की कोई चीज नहीं रह जाती है तब एक नयी समतामूलक कल्याणकारी व्यवस्था के लिए संकल्प व्यक्त किया जाता है, जिसमें नारी की प्रमुख भूमिका होती है। इस उपन्यास में महामाया, निपुणिका और सुचरिता का विद्रोह एक ओर तत्कालीन समाज व्यवस्था की जड़ता, अमानवीयता एवं शोषण के विरुद्ध है तो दूसरी ओर नवीन समाज-व्यवस्था के निर्माण में स्त्री की भूमिका का संकेतक भी। स्त्री-प्रकृति मनुष्यता के केंद्र में है इसलिए इसकी अस्मिता की उपेक्षा करना खतरे से खाली नहीं है। ‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ में नारी के प्रति आदर का जो भाव प्रकट हुआ है उसके मूल में मानव-कल्याण की कामना निहित है।

‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ उपन्यास समकालीन पूँजीवादी व्यवस्था की विकृतियों के चित्रण में भी पीछे नहीं रहता। जहाँ सामंती समाज में नारी का भोग्या रूप स्वीकृत था वहाँ पूँजीवादी आधुनिक समाज में नारी के प्रति पुरुषवादी मानसिकता में कोई सकारात्मक अंतर नहीं आया है। यह कहना असंगत नहीं होगा कि पूँजीवाद भोगवाद का ही एक परिवर्तित रूप है, इसलिए यहाँ भी नारी के प्रति दृष्टिकोण लगभग वैसा ही है, जैसा सामंती समाज में था। हाँ, यह जरूर है कि वह सामाजिक अवगुंठन से कुछ हद तक मुक्त हुई है लेकिन इस मुक्ति की सार्थकता तब तक सिद्ध नहीं हो सकती जब उसके प्रति, और स्पष्ट शब्दों में कहना चाहें तो, उसकी देह के प्रति पुरुष समाज की दृष्टि में सकारात्मक बदलाव नहीं आ जाता। भेद भाव पर आधारित इस समाज-व्यवस्था के सत्य को महामाया बहुत स्पष्ट शब्दों में कह देती है ‘पुरुष का सत्य और है, नारी का सत्य और है।’ सत्य की यह जुदा-जुदा परिभाषाएँ अथवा मानदण्ड सामाजिक विषमता, शोषण और भ्रष्टाचार को वैचारिक आधार प्रदान करते हैं। यह उपन्यास इस कुत्सित वैचारिकता को अस्वीकार करता है और समतावादी मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है। नारी जाति के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए, उसे मानवीय रूप प्रदान करते हुए और उसकी निजता की रक्षा का प्रबल समर्थन करते हुए यह उपन्यास मानवीय बोध के जिस बिंदु का स्पर्श करता है वह निश्चय ही एक प्रगतिशील चिंतन का परिणाम है।

इसे राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन और भारतीय अस्मिता की सुरक्षा संबंधी प्रयत्न के रूप में भी देखा जा सकता है। प्रत्यंत दस्युओं का आसन्न आक्रमण एक राष्ट्रीय संकट है। देवपुत्र तुवरमिलिन्द राष्ट्रीय आकांक्षा के प्रतीक हैं। लेकिन इस आकांक्षा की प्राप्ति तब तक संभव नहीं है जब तक सामान्य जनों की हिस्सेदारी इस आंदोलन में सुनिश्चित नहीं हो जाती। जनता यही शक्ति है, जिसे संगठित करना न सिर्फ एक चुनौती है बल्कि महत् उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक भी। इस उपन्यास में इसीलिए महामाया जनता को अमृत पुत्र के रूप में संबोधित करते हुए उसे दानवी शक्ति के विरुद्ध खड़ा होने का आह्वान करती हैं। एक तरह से यह उपन्यास सामंतवाद बनाम जनसामान्य के संघर्ष का कलात्मक इतिहास कहा जा सकता है।

बाणभट्ट द्वारा कान्यकुब्जेश्वर श्री हर्ष का सभासद बनकर राज्याश्रय प्राप्त करने का निपुणिका द्वारा जोरदार विरोध आज के युगीन संदर्भ में भी अत्यंत प्रासंगिक है। देश की स्वाधीनता से पूर्व और उसके बाद भी बुद्धिजीवी कवि कलाकारों की व्यापक पैमाने पर खरीद-फरोख्त शासन सत्ता द्वारा होती आ रही है। परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से साहित्यकारों का एक बड़ा समुदाय कला की स्वायत्तता और कलाकार की स्वतंत्रता के छद्म प्रश्न को उछाल कर व्यवस्था द्वारा जीवन की सुख सुविधाओं के प्रलोभन में व्यापक जनजीवन से कट गया। कला की शुद्धता के नाम पर उसने व्यापक जनजीवन के शोषण और कटु तिक्त जीवन अनुभवों के खुरदुरे प्रभाव से बचाते हुए सुंदर-सुंदर कोमल भावों की कलात्मक अभिव्यक्ति को ही वास्तविक साहित्य-धर्म निर्धारित किया। शोषित उत्पीड़ित नारी और अपनी दो जून की रोटी के लिए संघर्षरत बहुसंख्यक जनता की ज्वलंत समस्याओं से मुँह मोड़कर इन कवि कलाकारों ने कला का एक नया लोक निर्मित किया सौंदर्य लोक। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' बाण द्वारा राज्याश्रय प्राप्ति का संदर्भ इस तथ्य को रेखांकित करने के कारण आज और अधिक प्रासंगिक हो गया है।

चाटुकारिता सामंती समाज की प्रमुख विशेषता मानी जाती है। मध्यकालीन साहित्य राजाओं और सामंतों की प्रशस्तियों एवं बिरूदावलियों से भरा पड़ा है। भक्तिकाल में संत परंपरा ने साहित्य को जहाँ जनसामान्य से जोड़ने का काम किया था, मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में कवियों का एकमात्र लक्ष्य राज्याश्रय प्राप्त करना और अपने आश्रयदाताओं की मिथ्या प्रशंसा करना भर रह गया था। इस काल का साहित्य जनता की इच्छा आकांक्षाओं को व्यक्त करने में बिल्कुल असफल सिद्ध हुआ। जनसामान्य से कटा हुआ साहित्य अपनी कला के बल पर कब तक जीवित रह सकता है? उपन्यास का निम्नलिखित कथन इसी मायने में प्रासंगिक लगता है कि इसमें आश्रयदाताओं की मिथ्या प्रशंसा गाने से बाणभट्ट को आगाह किया गया है। विदित है कि बाण एक प्रतिष्ठित कवि था अतः उसकी चेतना को सामंती मूल्यों से खतरा अधिक था। यह चेतावनी इसलिए ज्यादा महत्व रखती है

‘उससे कह देना कि किसी जीवित व्यक्ति के नाम पर काव्य न लिखे!’ इसके कई खतरे थे, जिनका संकेत इस उपन्यास में मौजूद है। बाणभट्ट जिस महान् उद्देश्य को लेकर चलता है, वह उद्देश्य ही खतरे में पड़ जाता अगर वह कान्यकुब्जेश्वर या अन्य किसी राजा की बिरूदावली गाना शुरू कर देता। क्योंकि बाण के लक्ष्य और राजकुल की परंपरा के बीच विसंगति एवं विरोध स्पष्ट है। निपुणिका द्वारा उसके (बाणभट्ट) सभासद पद का विरोध अकारण नहीं है। वह अच्छी तरह जानती है कि राजकवि और जनकवि-दोनों अलग-अलग चीजें हैं, दोनों की अभिरुचियाँ व प्राथमिकताएँ भिन्न हैं ऐसे में यह बहुत संभव होता कि बाणभट्ट राजाश्रय के प्रमाद में भट्टिनी की मुक्ति के महत् उद्देश्य से भटक जाता, मानव-मूल्यों के गान से विमुख हो जाता और सबसे बढ़कर नारी जाति के प्रति उसकी दृष्टि कुंठित हो जाती। संभवतः इसीलिए जीवित व्यक्ति पर काव्य-सृजन से बाण को आगाह किया गया है। जनचेतना से असंपृक्क कवि मृतक के समान ही माना जाएगा। महामाया प्रश्न करती है

‘क्या निरीह प्रजा की बेटियाँ उनकी नयनतारा नहीं हुआ करतीं क्या राजा और सेनापतियों की बेटियों का खो जाना ही संसार की दुर्घटनाएँ हैं’ भट्टिनी देवपुत्र तुवरमिलिन्द की कन्या है। बाणभट्ट उनकी मुक्ति के लिए प्रतिबद्ध होता है परंतु साथ ही मुक्ति का यह प्रयत्न निपुणिका जैसी निम्नवर्गीय नारियों के संदर्भ में भी उतना ही महत्व रखता है। निपुणिका

और भट्ट का यह सामूहिक प्रयत्न स्त्री-मुक्ति के व्यापक उद्देश्य से जुड़कर जनतांत्रिक रूप ले लेता है और इस तरह वह महामया की चिंता को लेकर आगे बढ़ता है।

वस्तुतः यह उपन्यास सामंती आचार-विचार की कुरूपता - वीभत्सता पर प्रहार है। इसमें भैरवियों और महामया की वाणी सामंतविरोधी, जनतांत्रिक, मानवतावादी विचारधारा के रूप में प्रस्फुटित हुई है। प्रत्यंत दस्युओं के अमानवीय कृत्यों के विरुद्ध जन आक्रोश, संकुचित राष्ट्रीयता के सीन पर विश्व बंधुत्व की भावना, नारी के प्रति आदर व सम्मान, युद्ध के स्थान पर शांति का संदेश, सहज मानवीयप्रेम, दलितों की मनुष्यता का महत्व आदि ऐसे प्रश्न हैं जो इस औपन्यासिक कृति को जीवंत एवं समकालीन भी बना देते हैं। भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य सभ्यता के आदान-प्रदान पर आधारित मानवीय समाज के निर्माण की परिकल्पना हजारी प्रसाद द्विवेदी की उदार दृष्टि का परिचायक है। राजनीति धर्म और समाज के दूसरे क्षेत्रों में मनुष्य की सर्वतोमुखी उन्नति के समर्थन और उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों में बाधा पहुँचाने वाली शक्तियों के प्रति विरोध की अभिव्यक्ति एवं इन दुष्प्रवृत्तियों से निर्भय रहने का संदेश जैसे अनेक विचारबिंदु हैं, जो इस कृति को शाश्वत मानवीय अर्थवत्ता की तलाश की रचना सिद्ध करते हैं। इस उपन्यास का लक्ष्य है मनुष्यता की खोज, जो मध्यकाल में ही नहीं आज भी विरल होती जा रही है। मानववाद से इसे जोड़ने में यदि कोई बाधा है तो यही कि इसमें जीवन को कुछ हद तक दैवी विधान से संबद्ध मान लिया गया है, जिससे नियतिवाद के विरुद्ध मनुष्य की संघर्ष चेतना को धक्का लगता है। लेकिन समूचे उपन्यास को सामने रखकर विचार करें तो स्पष्ट हो जाता है कि इसके पात्र कर्मशील और नियति के विरुद्ध लगातार संघर्ष करते हैं। यह संघर्ष उपन्यास को जीवंत बनाता है। जीवित व्यक्ति पर काव्य लिखना चाटुकारिता का प्रतीक है और यह चाटुकारिता प्रतीक है रचनाकार की मृत्यु का।

13.8 धार्मिक वर्चस्व

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में बौद्ध धर्म और वैदिक धर्म के आपसी संघर्ष को भी चित्रित किया गया है। इससे धर्म की असलियत सामने आ जाती है और मनुष्य के लिए इसकी उपयोगिता-अनुपयोगिता भी स्पष्ट हो जाती है। सुचरिता स्थिति का सटीक व तथ्यपूर्ण विश्लेषण इस प्रकार प्रस्तुत करती है

'धनदत्त के गुरु भदंत वसुभूति बौद्ध धर्म को जिताकर ही छोड़ेंगे और भवभूति के प्रतिभट परमस्मार्त आचार्य मेघातिथि - जो आज की सभा के गुप्त सूत्रधार थे - सनातन धर्म को पुनः प्रतिष्ठित करके ही दम लेंगे। मनुष्य चाहे चूल्हें भाड़ में जाए, इन्हें अपने धर्म मत का डिंडिम पीटना है। एक की पीठ पर राजय शक्ति है और दूसरे की हथेली में प्रजा का विद्रोह है। इस जय-पराजय की प्रतिद्वन्द्विता में मनुष्य का चाहे सत्यानाश ही क्यों न हो जाए।'

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि राजनीति हो अथवा धर्म, वर्चस्व की लड़ाई हर जगह चल रही है। मनुष्य की अस्मिता की चिंता न धर्म को है और न ही राजनीति को। इतिहास पर नज़र डाले तो हम देखेंगे कि सातवीं सदी में धार्मिक स्थिति अत्यंत जटिल हो चुकी थी। बौद्ध धर्म ही नहीं, वैष्णव और शाक्त सम्प्रदाय भी कई खंडों में विभाजित हो चुके थे। इसके साथ ही इनमें वर्चस्व की लड़ाई भी सतह पर आ गई थी। आत्मकथा में अंकित वैष्णव-बौद्ध संघर्ष सर्वथा इतिहास सम्मत है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि धर्म की वास्तविक चिंता मनुष्य का कल्याण और उसका सर्वतोमुखी उत्थान न होकर कहीं न कहीं राजनीति और सत्ता प्रतिष्ठान का संरक्षण पाने की थी। आज के संदर्भ में भी यह सवाल उतना ही प्रासंगिक हो

गया है। धर्म जब पतनशीलता की ओर अग्रसर होता है तब उसकी यही गति होती है। वह जनता की श्रद्धा और विश्वास खो देता है। जब धर्म व्यक्ति के स्वार्थ पूर्ति का साधन बन जाए तब धर्म अपने आदर्शों से न केवल भटक जाता है बल्कि व्यक्ति के इशारे पर काम करता है।

‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ अपने भाषा-विन्यास और कथन भंगिमा से हमें उस लोक में पहुँचा देती है अथवा उस लोक को हमारे बीच उपस्थित कर देती है मानो सचमुच इस मोहक लोक में बिधे हुए हम हर्षवर्द्धन के राजकवि की डायरी की पंक्तियाँ पढ़ रहे हों और उसके अंतर्जगत् तथा परिवेश में उतर रहे हों। सवाल उठता है कि इस उपन्यास का भट्ट क्या सचमुच हर्षकालीन बाणभट्ट है अथवा राज्याश्रय और रचनाकार की अपनी अस्मिता को सुरक्षित रखने के समकालीन संघर्ष से जूझता आजादी के पहले या बाद का प्रलोभनों के जाल में भटकता पीड़ित, पराजित और समझौते करता हुआ आज का साहित्यकार या कलाकार है? यह प्रश्न आज की तारीख में और ज्यादा पैना एवं महत्वपूर्ण हो गया है। मध्यकालीन राजसभा का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने के लिए बुद्धिजीवी की अवतारणा आवश्यक थी। राजसभाओं की उच्छृंखलता, चाटुकारिता और खोखलेपन के बीच बुद्धिजीवी की स्थिति बहुत विचित्र थी। हर्षवर्द्धन द्वारा लम्पट कहा जाने पर बाणभट्ट क्रोधित हो जाता है लेकिन वही बाणभट्ट जब राजसभा का सदस्य चुन लिया जाता है तो वह गौरवान्वित अनुभव करता है। बाणभट्ट का यह चरित्र आज के बुद्धिजीवी, रचनाकारों व कलाकारों के जीवन सत्य को उभारता है। आज न जाने कितने ही रचनाकार और कलाकार सत्ता प्रतिष्ठानों की चापलूसी और उसका आश्रय पाने में ही अपने कर्म की सार्थकता समझते हैं। इस तरह यह उपन्यास हर्षकालीन सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों का समकालीन यथार्थ के संदर्भ में अन्वेषण का एक प्रयास है।

13.9 सारांश

‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ में मनुष्यता का संघान और प्रेम की सामाजिक अर्थवत्ता को प्रतिपादित किया गया है। निपुणिका प्रेम का उत्कर्ष है। उसका अभिनय इसी उत्कर्ष का प्रमाण है। वासवदत्ता की भूमिका में निपुणिका ने तो उन्माद ही बरसा दिया। उसके हर्ष, शोक और प्रेम के अभिनय में वास्तविकता थी। उसने प्रेम की दो दिशाओं को एकत्र कर दिया। भट्टिनी और निपुणिका दोनों के प्रति बाण का प्रेमानुराग ही प्रेम की दो दिशाएँ हैं भट्टिनी की सुरक्षा और मुक्ति के प्रति आश्वस्त हो जाने के पश्चात् निपुणिका प्रेम का वह उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत करती है, जो सामान्यतया असंभव दिखाई देता है। वह अपने प्रेम को भट्ट में विलीन कर देती है और इस तरह दो दिशाओं में बहने वाला प्रेम एकोन्मुखी हो जाता है। दूसरी तरफ भट्ट के प्रति भट्टिनी का प्रेम इस तरह व्यक्त हुआ है

‘भट्टिनी ने सुना तो उनका मुख विवर्ण हो गया। झुकी हुई आँखों को और झुकाकर बोली - जल्दी ही लौटना।’ लेकिन बाणभट्ट की अंतरात्मा से कोई चिल्ला उठता है - ‘फिर क्या मिलना होगा’

यह कहना गलत न होगा कि हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस उपन्यास में प्रेम का जो उच्चादर्श सामने रखा है उसका अंतिम क्षणों तक निर्वाह करने के लिए ही निपुणिका की मृत्यु और तदनंतर भट्टिनी से भट्ट के विछोह की योजना बनायी है। प्रेम कहीं दैहिक न हो जाए, इसके प्रति वे लगातार सतर्कता बरतते हैं।

अंत में हम इस औपन्यासिक कृति में गूँजने वाले उस मूल मंत्र की ओर लौटना चाहेंगे जिसमें अनुभव सत्य अथवा अनभयता का संदेश दिया गया है।

‘किसी से न डरना, गुरु से भी नहीं, मंत्र से भी नहीं, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं।’

हजारी प्रसाद द्विवेदी की इस रचनात्मक कृति की सार्थकता का सबसे बड़ा प्रमाण है उपर्युक्त संदेश, जो लोक, वेद, गुरु मंत्र की वर्जनाओं से मनुष्य को मुक्त रखने का आह्वान करता है। कोई अंतिम सत्य नहीं है। लोक और वेद भी एक सीमा के बाद अनुपयोगी और बाधक बन जाते हैं। इसीलिए जब बाण महावराह की मूर्ति को डूबने से बचाने की बात करता है तब बाबा उसे धिक्कारते हुए कहते हैं तू पाषण्डी है। यदि महावराह समुद्र में डूबी हुई पृथ्वी को उबारने की सामर्थ्य रखते हैं तो उनकी मूर्ति के जलमग्न होने पर मोह कैसा? जरूरत है मनुष्यता को डूबने से बचाने की इसीलिए बाण सचेत होकर कहता है कि, ‘मैं प्राण देकर भट्टिनी को बचाऊँगा।’ भट्टिनी की मानवता की रक्षा का महत् उद्देश्य है। भट्टिनी मानवीय मूल्यों का प्रतीक है, प्रेम और करुणा की भी। यही वे मूल्य हैं जो समाज को स्वस्थ दिशा में अग्रसर कर सकते हैं।

मनुष्य के जीवन मूल्य और आदर्शों की रक्षा और प्रतिष्ठा को बचाने में ही ‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ की सार्थकता और समसामयिक प्रासंगिकता है।

13.10 प्रश्न/अभ्यास

- 1) नारी जागरण और नारी मुक्ति की दृष्टि से ‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ की समीक्षा करें।
- 2) ‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ में चित्रित प्रेम की विशेषताओं के संदर्भ में उपन्यासकार की प्रेम विषयक दृष्टि को स्पष्ट करें।
- 3) अपने रचनाकालीन सामाजिक-राष्ट्रीय संदर्भ में ‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालें।
- 4) ‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ में संकेतित कवि-साहित्य की स्थिति पर प्रकाश डालें।
- 5) एक बुद्धिजीवी के रूप में बाणभट्ट के चरित्र को समकालीन संदर्भों से जोड़कर विश्लेषित करने का प्रयास करें।
- 6) ‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ में उपन्यासकार के इतिहास बोध और उसकी समसामयिकता की समझ को रेखांकित करें।
- 7) ‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ में चित्रित नारी पात्रों की क्रांतिकारी भूमिका पर विचार करें।

इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

- 1) प्रतिनिधि हिंदी उपन्यास-भाग 1, यश गुलाटी
- 2) शांतिनिकेतन से शिवालिक, (सं.) शिवप्रसाद सिंह
- 3) दूसरी परंपरा की खोज, नामवर सिंह

इकाई 8 मैला आंचल और आंचलिक उपन्यास की अवधारणा

इकाई की रूपरेखा

- 8.0 उद्देश्य
- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 आंचलिकता और आंचलिक उपन्यास
 - 8.2.1 हिंदी में आंचलिक उपन्यासों की परम्परा
- 8.3 मैला आंचल : आंचलिक संदर्भ
- 8.4 मैला आंचल : आंचलिकता के विविध रंग
 - 8.4.1 सामाजिक भेदभाव
 - 8.4.2 स्त्री-पुरुष संबंध के प्रति दृष्टिकोण
 - 8.4.3 लोकगीतों में अभिव्यक्त लोक संस्कृति
- 8.5 सारांश
- 8.6 प्रश्न व अभ्यास

8.0 उद्देश्य

‘उपन्यास एवं कहानी’ पाठ्यक्रम की यह आठवीं इकाई और खंड 2 की पहली इकाई है। ‘फणीश्वरनाथ रेणु’ द्वारा लिखित ‘मैला आंचल’ (1954) हिंदी-कथा-साहित्य का प्रथम और श्रेष्ठ आंचलिक उपन्यास है। रेणु ने बिहार के मिथिला अंचल को आधार बनाकर, इस अंचल के जन-सामान्य के सुख-दुख, रहन-सहन, संस्कृति, संघर्ष और लोकजीवन को अत्यंत कुशलता व कलात्मकता से इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है।

आइए आपके सामने इस खंड की तीन इकाइयाँ, ‘मैला आंचल’ के अध्ययन हेतु प्रस्तुत हैं। इस इकाई में आप :

- आंचलिकता और आंचलिक उपन्यास के संबंध से परिचित हो सकेंगे,
- हिंदी में आंचलिक उपन्यासों की परंपरा के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- ‘मैला आंचल’ में अभिव्यक्त आंचलिक संदर्भ को जान सकेंगे,
- ‘मैला आंचल’ में अभिव्यक्त विशिष्ट अंचल ‘मिथिला’ में जनसामान्य की वास्तविक स्थिति, स्त्री-पुरुष संबंधों के प्रति दृष्टिकोण, सामाजिक व्यवस्था और लोकगीतों में अभिव्यक्त लोक संस्कृति की विविधता, जटिलता और विशिष्टता से परिचित हो सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

‘घरती धन न अपना’ और ‘सूखा बरगद’ के पश्चात आपको अब फणीश्वरनाथ रेणु के अत्यंत चर्चित उपन्यास ‘मैला आंचल’ का अध्ययन करना है। ‘मैला आंचल’ फणीश्वरनाथ रेणु का प्रथम उपन्यास है, जो 1954 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास का प्रकाशन उस समय हिंदी साहित्य में एक घटना माना गया था। अपने प्रथम उपन्यास के प्रकाशन से ही इसके लेखक ने प्रसिद्धि के शिखर को सहज ही छू लिया। लेकिन बाद के किसी भी उपन्यास में लेखक अपने ही शिखर को फिर कभी नहीं छू पाया। ‘मैला आंचल’ ही भारतीय साहित्य में रेणु के स्थायी महत्व का आधार बन गया है।

‘मैला आंचल’ के लेखक फणीश्वरनाथ रेणु का जन्म 4 मई 1921 को बिहार के पूर्णिया जिला के औराही हिंगना गांव में हुआ था। उनके व्यक्तित्व का विकास केवल सृजनात्मक

मैला आंचल: फणीश्वरनाथ रेणु,
बाणभट्ट की आत्मकथा :
हजारीप्रसाद द्विवेदी

लेखक के रूप में ही नहीं एक सजग, सक्रिय नागरिक व देशभक्त के रूप में भी हुआ। 1942 के 'भारत छोड़ो' संग्राम में सक्रिय भागीदारी कर उन्होंने एक स्वाधीनता सेनानी के रूप में पहचान अपने यौवन में ही बनाई। स्वाधीनता की इस चेतना के साथ रेणु दमन व शोषण के आजीवन विरोधी रहे।

अपने पड़ोसी नेपाल की जनता को राजशाही के दमन और अत्याचारों से मुक्ति दिलाने के लिए भी रेणु ने वहाँ की जनता द्वारा शुरू की गई सशस्त्र क्रांति व राजनीति में सक्रिय हिस्सा लिया। इसी कड़ी में 1985-88 की आपात स्थिति का उन्होंने कड़ा विरोध किया। आपात स्थिति के विरोध में उन्होंने पद्मश्री की मानद राष्ट्रीय उपाधि लौटा दी। उन्हें पुलिस यातना भी झेलनी पड़ी और जेल यात्रा भी करनी पड़ी। रेणु के संघर्ष को 23 मार्च 1988 को आपात स्थिति के हटने में सफलता तो मिली लेकिन वे स्वयं बहुत देर जीवित नहीं रह पाए। रोग ने उनका शरीर जर्जर कर दिया था और 11 अप्रैल 1977 को उनका देहावसान हो गया।

रेणु 1952-53 में भी दीर्घकाल तक रोगग्रस्त रहे थे। इसी कारण वे सक्रिय राजनीति से हटकर साहित्य सृजन की ओर अधिक झुके और साहित्य सृजन में भी 1954 में 'मैला आंचल' के प्रकाशन ने उन्हें शीर्षस्थ हिंदी लेखकों में स्थान दिला दिया। 'मैला आंचल' के बाद उनके कुछ और उपन्यास प्रकाशित हुए - 'परती परिकथा', 'दीर्घतपा', 'कलंक मुक्ति', 'जुलूस' और 'पल्लूबाबू रोड' उनके बाद के उपन्यास हैं। इनमें 'पल्लूबाबू रोड' उनके देहांत के बाद छपा।

रेणु जितने प्रसिद्ध उपन्यासकार हुए, लगभग उतने ही प्रसिद्ध वे कहानीकार भी हैं। 'तुमरी', 'अग्निखोर', 'आदिम रात्रि की महक', 'एक श्रावणी दोपहरी की धूप', 'अच्छे आदमी' आदि उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। उनकी कहानी पर आधारित फिल्म 'तीसरी कसम' ने भी उन्हें बहुत प्रसिद्धि दिलाई।

फणीश्वरनाथ रेणु के कुछ संस्मरण भी प्रसिद्ध हुए हैं: 'ऋणकुल धनजल', 'वन-तुलसी की गंधी', 'श्रुत अश्रुत पूर्व' उनके संस्मरण हैं। रेणु दिनमान में रिपोर्ताज भी लिखते थे। 'नेपाली क्रांति कथा' उनके रिपोर्ताज का उत्तम उदाहरण है।

'मैला आंचल' के प्रकाशन से हिंदी में आंचलिक उपन्यास की धारा का प्रारंभ भी माना जाता है, यद्यपि इससे पूर्व भी अंचल विशेष के आधार बनाकर हिंदी में उपन्यास रचना होती रही है, लेकिन आंचलिक उपन्यास प्रारंभ करने का श्रेय हिंदी में 'मैला आंचल' को ही जाता है। अपने प्रकाशन के चार दशक से ज्यादा समय बीत जाने पर भी 'मैला आंचल' आज भी हिंदी में आंचलिक उपन्यास के अप्रतिम उदाहरण के रूप में स्थिर है।

'मैला आंचल' का महत्व केवल एक आंचलिक उपन्यास होने तक ही सीमित नहीं है, यह हिंदी का व भारतीय उपन्यास साहित्य का एक अत्यंत श्रेष्ठ उपन्यास भी माना जाता है। इस अर्थ में 'मैला आंचल' का दर्जा क्लासिक रचना का है। 'गोदान' के बाद हिंदी के जो कुछ सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माने जाते हैं, 'मैला आंचल' उनमें से एक है।

'मैला आंचल' व अपने अन्य उपन्यासों में रेणु ने बिहार के मिथिला अंचल को आधार बनाकर अपने अंचल के दुःख-सुख, वहाँ के सहन-सहन, संस्कृति, लोकजीवन को अत्यंत कुशलता व कलात्मकता से औपन्यासिक स्वरूप प्रदान किया है। अपने अंचल को अपनी रचनाओं के केंद्र में रख कर प्रस्तुत करने के कारण फणीश्वरनाथ रेणु हिंदी में आंचलिक उपन्यास की परम्परा के प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। हिंदी उपन्यास का कोई भी अध्ययन रेणु के उपन्यासों विशेषतः 'मैला आंचल' के अध्ययन के बगैर अधूरा है।

इस इकाई में आंचलिकता के संदर्भ में 'मैला आंचल' का अध्ययन व विश्लेषण किया जाएगा।

‘मैला आंचल’ को आंचलिक उपन्यास के संदर्भ में जानने समझने से पूर्व आंचलिकता और आंचलिक उपन्यास की अवधारणा को समझना ज़रूरी है।

आंचलिकता शब्द अंग्रेज़ी के रिजन (Rigion) शब्द के पर्याय रूप में हिंदी में प्रयुक्त हुआ है। अंग्रेज़ी में ‘रिजनल नावेल’ की सुस्थिर परंपरा रही है। अंग्रेज़ी में टामस हार्डी जैसे महान उपन्यासकार आंचलिक उपन्यासकार के रूप में ही प्रसिद्ध हुए हैं। जे.ए. कुडन के अनुसार ‘एक आंचलिक लेखक एक विशेष क्षेत्र पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है और इस क्षेत्र और वहाँ के निवासियों को अपनी कथा का आधार बनाता है।’

अंग्रेज़ी भाषा में सबसे पहले आंचलिक उपन्यासकारों में एक आमिस्थ अंग्रेज़ लेखिका मारिया एडवर्थ (1868-1849) का नाम लिया जाता है। उनके प्रसिद्ध उपन्यासों में ‘कासल रैक्वर्ट’ (1800), ‘बेलिंदा’ (1810) शामिल हैं।

अंग्रेज़ी में तीन लेखक आंचलिक उपन्यासकार के रूप में विशेष प्रसिद्ध हुए हैं : टामस हार्डी, ऑर्नल्ड बेनेट और विलियम फॉकनर। उसके इलावा यूरोप की अन्य भाषाओं : फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश आदि में भी अनेक लेखक आंचलिक चित्रण के लिए प्रसिद्ध हुए हैं।

भारतीय साहित्य में भी आंचलिकता का चित्रण लगभग सभी भाषाओं में मिलता है, किसी विशेष स्तर पर जाकर आंचलिकता एक प्रवृत्ति का रूप धारण कर लेती है। बंगला भाषा में विभूति भूषण बंधोपाध्याय, सतीनाथ भादुड़ी, मराठी में गो.नी.दांडेकर, पंजाबी में गुरदयाल सिंह आंचलिकता के चित्रण के कारण ही जाने जाते हैं।

यूरोप की इस पृष्ठभूमि के बाद भारत व हिंदी क्षेत्र में अंचल की अवधारणा पर विचार हो सकता है। स्पष्ट है कि ‘अंचल’ शब्द का अर्थ किसी ऐसे भूखंड, प्रांत या क्षेत्र विशेष से है, जिसकी अपनी एक विशेष भौगोलिक स्थिति, संस्कृति, लोकजीवन, भाषा व समस्याएँ हों। अपनी तमाम विशिष्टताओं से उस अंचल विशेष का अपना एक जीवित व्यक्तित्व नज़र आए, जो दूसरे अंचलों से अलग पहचान बनाए।

ऐसे किसी अंचल विशेष को आधार बनाकर रची जाने वाली औपन्यासिक कृति सहज ही आंचलिक उपन्यास मान ली जाएगी। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने ‘हिंदी साहित्य कोश’ में कहा है कि ‘लेखक द्वारा अपनी रचना में ‘आंचलिकता की सिद्धि के लिए स्थानीय दृश्यों, प्रकृति, जलवायु, त्यौहार, लोकगीत, बातचीत का विशिष्ट ढंग, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, भाषा के उच्चारण की विकृतियाँ, लोगों की स्वभावगत व व्यवहारगत विशेषताएँ, उनका अपना रोमांस, नैतिक मान्यताओं आदि का समावेश बड़ी सतर्कता और सावधानी से किया जाता है।’ आंचलिकता की इस परिभाषा के बाद हिंदी में आंचलिक उपन्यासों की परंपरा का विहंगावलोकन भी आपके लिए उपयोगी हो सकता है।

8.2.1 हिंदी में आंचलिक उपन्यासों की परंपरा

यद्यपि 1954 में रेणु के ‘मैला आंचल’ के प्रकाशन के बाद ही हिंदी में एक स्वतंत्र प्रवृत्ति के रूप में आंचलिक उपन्यास की चर्चा आरंभ हुई, तथापि उपन्यास में अंचल विशेष का चित्रण रेणु से पहले भी मिलता है। नागार्जुन ने रेणु से पहले लिखना शुरू किया। उनके अधिकांश उपन्यासों को सामाजिक या प्रगतिवादी धारा में रखने के साथ-साथ आंचलिक उपन्यास भी माना जाता है। नागार्जुन के ‘बलचनमा’ (1952) में आंचलिकता का पहली बार कलात्मक समावेश हुआ है। इस उपन्यास में बिहार की मिथिला भूमि को ही आधार बनाया गया है। एक नौजवान बलचनमा के जीवनवृत्त द्वारा अंचल विशेष के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व

सांस्कृतिक स्तरों को इस उपन्यास में उघाड़ा गया है। नागार्जुन के प्रथम उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' (1949) में भी आंचलिकता की छाप है, लेकिन 'बलचनमा' के स्तर की नहीं। इन उपन्यासों के साथ ही नागार्जुन के अन्य उपन्यासों 'नई पौध' (1953), 'बाबा बटेसरनाथ' (1954), 'वरुण के बेटे' (1958), 'दुःख मोचन' (1958) आदि में भी बिहार के आंचलिक परिवेश का चित्रण हुआ है। इनमें 'वरुण के बेटे' में आंचलिक परिवेश का चित्रण अधिक परिपक्व माना जाता है।

रेणु के अतिरिक्त हिंदी में अन्य आंचलिक उपन्यासकारों में उदयशंकर भट्ट का नाम भी सम्मान से लिया जाता है। उनके उपन्यास 'सागर, लहरें और मनुष्य' (1955) में मुम्बई के मछुआरों के एक क्षेत्र वरसोवा का बड़ा जीवंत चित्रण हुआ है। इस उपन्यास की सफलता का आधार इसका सजीव परिवेश चित्रण है, जिसके कारण 'सागर लहरें और मनुष्य' को हिंदी का महत्वपूर्ण आंचलिक उपन्यास स्वीकार किया गया है।

उदयशंकर भट्ट के अन्य उपन्यास 'लोक परलोक' (1955) में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के तीर्थ ग्राम का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है।

रांगेय राघव के उपन्यास 'कब तक पुकारूं' (1958) में राजस्थान और ब्रज की सीमा पर बसे गाँव के कर नटों का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में आंचलिकता के चित्रण के लिए क्षेत्र की सजीव भाषा का भी सहारा लिया गया है जिसमें खड़ी बोली हिंदी में ब्रजभाषा के बहुतायत है। रांगेय राघव के अन्य उपन्यासों 'मुर्दों का टीला' आदि में भी आंचलिकता का चित्रण हुआ है।

देवेन्द्र सत्यार्थी पंजाबी के साथ-साथ हिंदी के भी प्रतिष्ठित लेखक हैं। उनके उपन्यास 'ब्रह्मपुत्र' (1956) में असम प्रदेश के लोकजीवन का मोहक चित्रण हुआ है। उनके कुछ अन्य उपन्यासों 'दूध झाछ' आदि में भी आंचलिकता का समुचित समावेश है।

राजेन्द्र अवस्थी के 'जंगल के फूल', में बस्तर क्षेत्र के जनजीवन का चित्रण हुआ है। शैलेश मटियानी के 'हौलदार' (1960) में कुमाऊँ के पर्वतीय अंचल का गाढ़ा स्पर्श है। रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर' में गोरखपुर क्षेत्र का जनजीवन अपनी आंचलिकता के साथ विविधता में अंकित हुआ है।

शिवप्रसाद सिंह के 'अलग अलग वैतरणी' (1968) में करैता गांव का जीवन है तो श्रीलाल शुक्ल के 'राग दरबारी' (1965) में शिवपाल गंज की कथा है।

इन सभी उपन्यासों से पहले 1925 ही में शिवपूजन सहाय के 'देहाती दुनिया' में भोजपुरी जनपद के एक अंचल का मनोहारी चित्रण हुआ है। इस अर्थ में 'देहाती दुनिया' को भी हिंदी का प्रथम आंचलिक उपन्यास कहा जा सकता है। इसी परंपरा में शिवप्रसाद रुद्र का 1952 में प्रकाशित उपन्यास 'बहती गंगा' को भी आंचलिकता के चित्रण के कारण आंचलिक उपन्यासों में गिना जा सकता है।

अमृतलाल नागर के उपन्यासों 'बूंद और समुद्र' (1956) व 'सेठ बांकेमल', 'बलभद्र ठाकुर के 'मुक्तावली', 'आदिलनाथ' आदि, हिमांशु श्रीवास्तव के 'लोहे के पंख' व 'नदी फिर बह गली', राही मासूम रज़ा का 'आधा गांव', मनहर चौहान 'हिरना सांवरी', केशव प्रसाद मिर 'कोहबर की शर्त', भैरव प्रसाद गुप्त कृत 'गंगा मैया' व सती मैया का चौरा', विवेकी राय कृत 'लोक ऋण', हिमांशु जोशी कृत 'कमार की आग', धूमकेतु कृत 'माटी की महक' आदि में भी अंचल विशेष के सजीव चित्र प्रस्तुत हुए हैं।

पंजाब के जनजीवन का जीवंत चित्रण कृष्णा सोबती कृत 'ज़िंदगीनामा' व मित्रो मरजानी व जगदीश चंद्र कृत 'कभी न छोड़े खेत', 'घरती धन न अपना' व 'नरक कुंड में बास' में हुआ

है। बलवंत सिंह के उपन्यासों 'शत चोर और चांद', 'कलि कोष', 'राबी पार', 'चक्क पीरां का जस्सा' व 'दो अकालगढ़' में भी विभाजन पूर्व पंजाब का रोमांटिक चित्रण प्रस्तुत हुआ है।

वास्तव में अंचल विशेष के चित्र हिंदी के अनेक उपन्यासों में हुए हैं, लेकिन उन सभी उपन्यासों को उनकी अन्य विशेषताओं - सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक आदि के कारण उन्हें आंचलिक उपन्यासों की श्रेणी में नहीं रखते।

फणीश्वर नाथ रेणु ने 'मैला आंचल' के बाद 'परती परिकथा' (1958) में भी 'मैला आंचल' के ही अंचल विशेष को पुनः नयी कथा के माध्यम से चित्रित किया है। यहाँ परानपुर गांव केंद्र में है, जो स्वातंत्र्योत्तर संक्रमणकालीन भारतीय गांवों का प्रतीक है।

रेणु के एक अन्य उपन्यास 'जुलूस' में गोडियार गांव की कथा है, जहाँ पूर्वी बंगाल से उखड़कर आए शरणार्थी बसे हैं। रेणु के 'दीर्घतपा', 'कलंक मुक्ति' व 'पलदूबाबू रोड' उपन्यासों में भी बिहार के अंचल की ही कथा का विस्तार मिलता है।

आंचलिकता और आंचलिक उपन्यास, विशेषतः हिंदी उपन्यास के संदर्भ में अब 'मैला आंचल' में आंचलिकता की स्थिति पर विस्तार से विचार करना आपके लिए अधिक उपयोगी होगा।

8.3 मैला आंचल : आंचलिक संदर्भ

'मैला आंचल' उपन्यास को, इससे पहले कि आलोचक इसकी आंचलिक उपन्यास के रूप में व्याख्या या विश्लेषण करते, स्वयं लेखक ने ही 'आंचलिक उपन्यास' कहकर प्रस्तुत किया है। उपन्यास के प्रथम संस्करण की संक्षिप्त भूमिका में रेणु ने पहला ही वाक्य लिखा है - 'यह है मैला आंचल एक आंचलिक उपन्यास।' वास्तव में लेखक के ये शब्द हिंदी उपन्यास के विकास में निर्णायक दिशा देने वाले सिद्ध हुए, क्योंकि 1954 से पहले भी हिंदी में आंचलिक उपन्यासों की रचना हो रही थी, लेकिन किसी आलोचक या उन उपन्यासों के लेखकों ने अपनी औपन्यासिक रचना को 'आंचलिक' नहीं कहा। यह रेणु का सृजनात्मक प्रतिमान का सचेत प्रयास ही है कि उन्होंने स्वयं इसे आंचलिक उपन्यास कहा। इस अर्थ में रेणु ने एक सर्जक के साथ-साथ एक आलोचक व विश्लेषक की भूमिका भी स्वयं ही निभाई।

'मैला आंचल' के आंचलिक संदर्भ को समझने के लिए रेणु द्वारा लिखी इस उपन्यास की संक्षिप्त भूमिका का पर्याप्त महत्व है।

रेणु ने अपनी भूमिका में ही उपन्यास की आंचलिकता की अनेक परतों को खोला है। उन्होंने पूर्णिया को उपन्यास का कथानक कहा है। अर्थात् एक अंचल विशेष ही उपन्यास की कथा का आधार बिंदु है, ना कि चरित्र विशेष या घटना विशेष। इतने स्पष्ट रूप से शायद इससे पहले किसी भी उपन्यासकार ने क्षेत्र या अंचल विशेष को सृजनात्मकता के संदर्भ में इतना महत्व नहीं दिया। इस उपन्यास में पूर्णिया का एक जीवन्त व्यक्तित्व हमारे सामने अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ उद्घाटित हुआ है।

पूर्णिया को कथानक कह कर रेणु ने पूर्णिया की स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत की है। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है, जिसकी सीमा एक ओर नेपाल तो दूसरी ओर पाकिस्तान (अब बांगला देश) व पश्चिम बंगाल से लगती है। पूर्णिया के भौगोलिक नक्शे को और अधिक मूर्त रूप देते हुए रेणु ने भूमिका में ही बताया है कि पूर्णिया की सीमा रेखा संथाल परगना के आदिवासी क्षेत्र व मिथिला के क्षेत्र से भी मिली हुई है। पूर्णिया के विशाल क्षेत्र को उन्होंने अपने कथानक का आधार न बनाकर इस क्षेत्र के केवल एक ही गांव (मेशीगंज) को केंद्र में रखा है और यह गांव भी 'पिछड़े गांवों के प्रतीक' रूप में प्रस्तुत किया गया है। अपनी बात को रेणु

ने काव्यात्मक रूप में इस प्रकार कहा है - 'इसमें फूल भी हैं शूल भी, धूल भी है, गुलाल भी, कीचड़ भी है चंदन भी, सुंदरता भी है कुरूपता भी ' मैं किसी से दामन बचाकर नहीं निकल पाया।'

रेणु की 'मैला आंचल' की भूमिका रूप में आई यह काव्यात्मक अभिव्यक्ति 'मैला आंचल' के विश्लेषण में प्रायः उद्धृत की जाती है। वास्तव में रेणु ने 'मैला आंचल' के शरीर (पूर्णिमा - भौगोलिक क्षेत्र) व आत्मा (फूल-शूल, धूल-गुलाल, कीचड़-चंदन, सुंदर-कुरूप) आदि के स्पष्ट संकेत उपन्यास की संक्षिप्त भूमिका में दे दिए हैं। अब देखना यह है कि उपन्यास में इस शरीर और आत्मा ने कैसा रूप ग्रहण किया है।

रेणु ने 'मैला आंचल' की कथा को दो खंडों में करीब ढाई सौ पृष्ठों की पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया है। 1946 से 1948 के बीच के ऐतिहासिक रूप से संक्रमण काल के अत्यंत महत्वपूर्ण युग-खंड को लेखक ने सृजनात्मक रूप में बांधने का प्रयास किया है। करीब सौ वर्ष के ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के बाद 1948 में भारतीय नेताओं के हाथों सत्ता सौंपने का यह ऐतिहासिक काल-खंड है। रेणु के उपन्यास की प्रेरणास्रोत कोई व्यक्ति-चरित्र नहीं, ग्रामवासिनी भारत मां है। उपन्यास के प्रमुख चरित्र डॉ. प्रशांत कुमार की भावनाओं में भी यही ग्रामवासिनी मां रची-बसी है।

भारतमाता ग्रामवासिनी!

खेतों में फैला है श्यामल

धूल भरा मैला-सा आंचल!

मैला आंचल! लेकिन धरती माता अभी स्वर्णाला है। डॉ. प्रशांत के दिल का दर्द रेणु के अपने दिल का दर्द है। रेणु का भाव जगत 1942 के 'भारत छोड़ो' आंदोलन से लेकर 1948 के सत्ता परिवर्तन व स्वातंत्र्योत्तर भारत की बनती-बिगड़ती तस्वीर से निर्मित है। देश की जनता और विशेषतः 'ग्रामवासिनी' किसान जनता के दुःख-सुख से उनका गहरा सरोकार है और इस गहरे सरोकार से ही 'मैला आंचल' की रचना हुई है। इस गहरे सरोकार से ही आंचलिक उपन्यास की रेणु की कल्पना व अवधारणा विकसित हुई है। देश रेणु के लिए कोई अमूर्त इकाई नहीं है। उनका देश पचहत्तर प्रतिशत ग्रामीण अंचलों में बसे जन-जन से बना है। बिहार के अंचलों का अपना रंग है तो पंजाब के अंचलों का अपना, दक्षिण का अपना रंग है और पश्चिम का अपना। सो देश को किसी एक रंग में यांत्रिक रूप से आबद्ध नहीं किया जा सकता। यदि देश की संकल्पना को मूर्त रूप देना हो और इससे भी बढ़कर सृजनात्मक रूप देना हो तो इसका रंग-बिरंगा रूप अनेक क्षेत्रों के रंग-बिरंगे अंकों से ही उभरेगा। इसका एक रूप रेणु के 'मैला आंचल' के रूप में उभरेगा तो दूसरा कृष्णा सोबती के 'ज़िंदगीनामा' के रूप में।

'मैला आंचल' की आंचलिकता का संदर्भ समझने के लिए सबसे पहली व मुख्य जरूरत है आंचलिक चित्रण के पीछे उनकी मनोभावना को समझना। 'मैला आंचल' के अंचल-चित्रण के पीछे निहित मनोभावना है - अत्यंत गहरा देशप्रेम और यह देश प्रेम पत्थर की इमारतों से न होकर देश की मूर्त मेहनतकश जनता से है और 'मैला आंचल' के विशेष संदर्भ में यह प्रेम बिहार के पूर्णिमा क्षेत्र के मेरीगंज गांव की संघर्षशील जनता से है। मेरीगंज वास्तव में केवल बिहार के एक अंचल विशेष के पिछड़े गांवों का प्रतीक भर नहीं है, मेरीगंज 'ग्रामवासिनी भारत माता' के धूल भरे 'मैले से आंचल' का संपूर्ण चित्र बन जाता है।

मैला आंचल की आंचलिकता का यही व्यापक संदर्भ है, जिससे इसमें शूल-फूल, धूल-गुलाल आदि को अधिक संवेदना से समझा जा सकता है। इस व्यापक संदर्भ का महत्व और भी बढ़ जाता है, जब इसे 1942-48 के कालखंड की पृष्ठभूमि में समझा जाता है। रेणु को यदि अंचल विशेष का चित्रण ही अपेक्षित होता तो उन्हें कालखंड के उल्लेख की आवश्यकता न

होती। लेकिन रेणु का कालखंड के उल्लेख और उस कालखंड की व्यापक परिस्थितियों के चित्रण पर विशेष बल है। इस ऐतिहासिक कालखंड के संक्रमणकालीन दौर के सम्पूर्ण चित्रण के कारण ही 'मैला आंचल' हिंदी के इतने महत्वपूर्ण उपन्यास का स्थान हासिल कर सका, अन्यथा केवल आंचलिकता का चित्रण तो हिंदी में अनेक उपन्यासों में हुआ है। लेकिन उनका वैसा महत्व नहीं है, जैसा 'मैला आंचल' का है। स्वयं रेणु के ही अन्य उपन्यास आंचलिकता के अधिक सघन चित्रण के बावजूद 'मैला आंचल' के शिखर को नहीं छू पाए।

अतः 'मैला आंचल' संबंधी दो बातें स्पष्ट हैं कि यह उपन्यास आंचलिक उपन्यास की प्रवृत्ति आरंभ करने वाला उपन्यास तो है, लेकिन इसकी शक्ति केवल इसकी आंचलिकता के कारण नहीं, वरन् एक ऐतिहासिक दौर के संक्रमण को आंचलिकता के परिवेश में चित्रित करने के कारण है।

8.4 मैला आंचल : आंचलिकता के विविध रंग

1946 में बिहार के सुदूर पिछड़े गांव में पुलिस या सेना के जवानों के पहुंचने का क्या प्रभाव होता है, इसका चित्रण उपन्यास के प्रारंभ में मिलता है। बिना किसी पड़ताल के गांव में बिजली की तरह खबर फैलती है कि 'मलेटरी ने बहस चैथरु को गरवक कर लिया है।' खबर फैलने के पीछे पृष्ठभूमि यह है कि 1942 के जन-आंदोलन के समय इस गांव में तो न कोई घटना घटी, न ही सेना-पुलिस आई, लेकिन ज़िले भर की घटनाएँ बढ़-चढ़ कर अफवाहों के रूप में यहाँ खूब फैलीं और इन बढ़ी-चढ़ी खबरों या अफवाहों से भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन का त्रासजनक चित्र गांववासियों में फैलता है। इसीलिए वर्दीधारी चाहे जिस कारण से गांव में आए हैं, उनका प्रथम प्रभाव एक दमनकारी सत्ता के तंत्र रूप में ही पड़ता है। रेणु ने इस प्रभाव को एक नाटकीय रूप देकर 'मैला आंचल' के प्रारंभ में ही चित्रित किया है।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के बंगाली अधिकारी 'मलेरिया सेंटर' खोलने के लिए गांव में सुरक्षा कर्मियों के साथ आ गए हैं। गांव में खबर फैलती है गिरफ्तारियों की और गांव के लोग गांव के स्वतंत्रता सेनानी बालदेव गोप को खुद ही बांध ले आते हैं, क्योंकि बालदेव दो साल जेल में रहा है, खदर पहनता है और 'जै हिंद' बोलता है। इस घटना का नाटकीय अंत होता है, बालदेव के अतिरिक्त सम्मान से, क्योंकि बंगाली अफसर का किरानी जीतन बाबू पहले कांग्रेस दफ्तर का किरानी था और वह बालदेव की प्रशंसा के पुल बांध देता है।

आंचलिकता का पहला रंग उघड़ता है 'गाँववासियों के पिछड़ेपन के चित्रण के रूप में, जहाँ अभी शिक्षा और जागृति के चिन्ह नहीं हैं और 'सरकार बहादुर' की मानसिक गुलामी से लोग बंधे हैं। पिछड़ेपन के चित्रण के साथ गांव की पृष्ठभूमि का अंकन भी रेणु ने किया है। यह गांव है मेरीगंज, जो दौतहट स्टेशन से सात कोस पूरब, बूढ़ी कोशी नदी के पार है।'

इस गांव का पहले कुछ और नाम था। उन्नीसवीं सदी के आखिर और बीसवीं सदी के शुरू में इस क्षेत्र में नील की खेती के लिए अंग्रेजों ने यहाँ गांव-करबों-जंगलों-मैदानों में कोठियाँ बनाईं। बीसवीं सदी के शुरू में आए डब्लू.जी. मार्टिन ने इस गांव में कोठी बनवाई और गांव का नाम बदलकर अपनी नयीनवेली दुल्हन मेरी के नाम पर रखा - मेरीगंज। गांव का नाम तो हो गया मेरीगंज, लेकिन मेरी यहाँ कुल एक सप्ताह ही रह पाई और 'जड़ेया' बुखार से चल बसी। मार्टिन को तब पता चला कि गांव में पोस्ट आफिस से पहले डिस्पेंसरी खुलवाना ज़रूरी है। मेरी की याद में मार्टिन ने डिस्पेंसरी के लिए ज़मीन दी, ज़मीन आसमान एक किया, लेकिन डिस्पेंसरी न खुलवा सका और पागल होकर मर गया। ब्रिटिश उपनिवेश ने जिस प्रकार की शासन व्यवस्था स्थापित की, इसका प्रभाव आज भी देखा जा सकता है। और पैंतीस बरस बाद अब गांव में मलेरिया सेंटर। डिस्पेंसरी खुलने जा रही थी।

रेणु की सृजनात्मकता का कमाल इस बात में है कि उन्होंने अपना कथानक इस प्रकार बुना है कि आंचलिकता के चित्रण के रूप में मेरीगंज का भौगोलिक चित्र ही नहीं, वहाँ का सामाजिक-सांस्कृतिक चित्र भी उद्घाटित होता है, लेकिन इससे भी बढ़ कर औपनिवेशिक शासन-व्यवस्था का, नग्न चित्र भी साथ-साथ उद्घाटित होता है।

मेरीगंज के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का चित्रण करते हुए रेणु गांव में बारह वर्ण होने की बात करते हैं। इस गांव में तीन जातियाँ प्रमुख हैं - राजपूत, कायस्थ व यादव। इन के अंतर्विरोधों को रेणु ने बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है जिस पर आगे चर्चा की जाएगी।

8.4.1 सामाजिक भेदभाव

गांव में कबीरपंथी डेरा है, जिसके महंत सेवादस इलाके के ज्ञानी साधु समझे जाते हैं। लेकिन लछ्मी नाम की लड़की को लेकर महंत की बदनामी भी है। महंत अंधा हो जाता है और गांव वालों को विश्वास है कि लछ्मी जैसी अबोध बालिका को अपनी दासी बनाने के कारण यह अंधा हुआ है। इस महंत के चले रामदास को भी जनविश्वास में लछ्मी पर आंख रखने वाला लंपट ही समझा जाता है। लेकिन यही महंत जब रात के सपने की बात कहकर जनता को गांव में खुल रहे अस्पताल के पक्ष में कर लेता है व साथ ही गांववासियों के लिए भण्डारे की घोषणा कर देता है तो गांव वालों का नज़रिया उसके प्रति बदल जाता है। पूड़ी-जलेबी और दही-चीनी के भण्डारे से जनमत बदल जाता है। गांव के अनेक ऐसे गरीब टोले हैं, जिन्होंने जीवन में कभी पूड़ी-जलेबी चखी भी नहीं। इस भंडारे से गांव का जातीय भेदभाव भी उद्घाटित होता है। ब्राह्मण टोली वालों का अलग, राजपूतों का अलग और नीची जातियों का खान-पान अलग।

‘मैला आंचल’ में लेखक का सर्वाधिक ध्यान अंचल की जन-चेतना को चित्रित करने पर केंद्रित है। गांव में अस्पताल बनने की प्रक्रिया, राष्ट्रीय आंदोलन की पृष्ठभूमि, राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में औपनिवेशिक दमन और दमन के सामने सामान्य जन का कुछ झुकना व कुछ प्रतिरोध करना इन सभी स्थितियों को रेणु ने पूर्णिया जिला के जनसामान्य के प्रति हार्दिक संवेदना महसूस करते हुए चित्रित किया है। साथ ही साथ मिथिला अंचल की लोक संस्कृति भी सहज रूप से अंकित होती चलती है।

कथा का आरंभ डॉ. प्रशांत कुमार के गांव आने से होता है, लेकिन डॉ. के गांव पहुंचने से पहले लेखक गांव की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियों का एक रेखाचित्र पृष्ठभूमि के रूप में उकेर देता है। मिथिला क्षेत्र में सभागाछी अर्थात् विवाहार्थी मैथिलों के मेले का जिक्र भी लेखक ने ‘जोतखी जी’ के नकली दांत लगवाने के हंसी खेल भरे प्रसंग में कर दिया है। गांव की जाति भेद की चेतना ब्राह्मण टोली द्वारा डॉ. की जाति के प्रति जिज्ञासा दिखाने खाना खाने के प्रति विरोध दिखाने से प्रकट होती है।

डॉ. प्रशांत कुमार के गांव पहुंचने के पहले ही महंत सेवादस की मृत्यु हो जाती है और यहाँ पहली बार मिथिला की लोक संस्कृति अपने धार्मिक पाठ वाले लोकगीतों में प्रकट होती है। सबसे पहले बीजक का पाठ शुरू होता है, महंत को मिट्टी दी जाती है, उनकी देह पर सफेद चादर ओढ़ाई जाती है, तब महंत का चेला रामदास ‘निरगुन’ गाता है।

कांचहि बांस के पिंजडा
जामें द्विथरो न बाती हो
अरे हंसा उडल आकाश
कोई संगी न साथी हो!

महंत की मृत्यु के बाद दासी व कोठारिन लछमी और स्वतंत्रता सेनानी बालदेव जी में निकटता और बढ़ जाती है। लछमी अपने बीजक की प्रति बालदेव को रोज़ पाठ करने के लिए देती है। मेरीगंज के डेरे के चित्रण से मिथिला क्षेत्र में संत कबीर व कबीर पंथ के प्रभाव का भी पता चलता है। हालांकि कबीर जैसे विद्रोही संत ने जीवन में तमाम धार्मिक व सामाजिक विकृतियों और निरूपताओं के प्रति विद्रोह किया, लेकिन चार सौ बरस बाद उनके नाम पर चलाए गए पंथ में वही सब विकृतियाँ प्रवेश करती दिखाई देती हैं, जिनके विरुद्ध कबीर की वाणी अपनी प्रखरता में गुंजी थी। यही स्थिति स्वतंत्रता आंदोलन के संदर्भ में भी उद्घाटित होती है। महात्मा गांधी के नेतृत्व में बालदेव व बावनहाथ जैसे लाखों ईमानदार कार्यकर्ताओं ने जो आंदोलन चलाया, वह गांधी जी के जीवन काल में और बाद में किन विकृतियों का शिकार हुआ है यह भी 'मैला आंचल' में अच्छी तरह उद्घाटित हुआ है।

डॉ. प्रशांत कुमार के उपन्यास में प्रवेश से आंचलिकता, जातीयता और राष्ट्रीयता के उलझे सवाल और गति प्राप्त करते हैं। मेरीगंज में नाम पूछने के बाद लोग जात पूछते हैं और प्रशांत के शब्दों में उसकी जाति है - डॉ. डॉ. बंगाली है या बिहारी? नहीं, वह 'हिंदुस्तानी' है।

डॉ. वास्तव में अनाथ बालक है, जिसे डॉ. अनिल कुमार बनर्जी की पत्नी स्नेहमयी ने पाल-पोस कर बड़ा किया है। कोशी नदी से वह उपाध्याय परिवार को मिला था, जिसने उसे परित्यक्ता स्नेहमयी को सौंप दिया था। 1942 के जन-आंदोलन में डाक्टर ने हिस्सा लिया था और 1946 में कांग्रेसी मंत्रिमंडल में रिहाई के उपरांत विदेश जाने की बजाय उसने मेरीगंज में मलेरिया सेंटर में रिसर्च करने का फैसला किया था। वही प्रशांत अब मार्टिन के सपने और अपने आदर्श को पूरा करने मेरीगंज आया है। यहाँ मेरीगंज आकर ही उसे यथार्थ की, लोकजीवन की वास्तविकताओं का भी बोध होता है। प्रशांत को बिदा करने आई उसकी मित्र ममता उसे बाबा विश्वनाथ का प्रसाद देकर भारतीय वैज्ञानिक व्यवहार के अंतर्विरोध को भी प्रकट कर देती है। ममता स्वयं भी डॉ. है, लेकिन मंगल कामना उसे बाबा के प्रासाद में ही दिखाई देती है। मेरीगंज अंचल की कई विशेषताओं को रेणु ने अपने प्रमुख पात्र डॉ. प्रशांत के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

'गांव के लोग बड़े सीधे दीखते हैं, सीधे का अर्थ यदि अनपढ़, अज्ञानी और अंधविश्वासी हो तो वास्तव में सीधे हैं वे। जहाँ तक सांसारिक बुद्धि का सवाल है, वे हमारे और तुम्हारे जैसे लोगों को दिन में पाँच बार ठग लेंगे। और तारीफ़ यह है कि तुम ठगी जाकर भी उनकी सरलता पर मुग्ध होने के लिए मजबूर हो जाएगी। यह मेरा सिर्फ़ सात दिन का अनुभव है। संभव है, पीछे चलकर मेरी धारणा गलत साबित हो। मिथिला और बंगाल के बीच का यह हिस्सा वास्तव में मनोहर है। औरतें साधारणतः सुंदर होती हैं, उनके स्वास्थ्य भी बुरे नहीं।' (मैला आंचल, पृष्ठ 41)

पिछड़े क्षेत्रों के ग्रामीणों संबंधी यह धारणा केवल मेरीगंज ही नहीं, देश के किसी भी क्षेत्र पर लागू हो सकती है। लेकिन यहाँ अंचल की विशिष्टता भी प्रकट होती है। इसके मनोहारी रूप में यानि प्राकृतिक पर्यावरण की दृष्टि से और औरतों की सुंदरता यानि सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण की दृष्टि से। लेखक ने अपने पात्र डॉ. प्रशांत के जरिये अपनी भावनाओं व विचारों को व्यक्त करने का प्रयास भी किया है।

डॉ. का गाँव में पहला चुनौतीपूर्ण रोगी है - तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद की बेटी कमला जो एक स्तर पर मानसिक रोगी है, लेकिन इस रोग की अभिव्यक्ति कई बार शारीरिक स्तर पर भी होती है। कमला युवा लड़की है, जिसका अनेक कारणों से अभी विवाह नहीं हो पाया है। दो तीन जगह बात पक्की होकर टूट गई और अब कोई लड़का तैयार न होने से कमला को अपने अस्वीकृत किए जाने का मानसिक आघात है, जो तहसीलदार की अकेली लाडली बेटी होने से उतिरिक्त संवेदनशील होने से अधिक तीव्रता प्राप्त करता है। डॉ. द्वारा इसका इलाज रेडियो के गीत से शुरू होता है और कमला खिल-खिलाने लगती है।

8.4.2 स्त्री-पुरुष संबंध के प्रति दृष्टिकोण

'मैला आंचल' में चित्रित अंचल में लगता है कि स्त्री-पुरुष संबंधों को लेकर जन-चर्चाएं जैसी भी हों, कुंठाएं उतनी नहीं हैं। इन संबंधों में महंत सेवादास लक्ष्मी संबंध, महंत रामदास - रामप्यारी संबंध, फुलिया-सहदेव मिश्र संबंध, रामप्यारी की मां के संबंध इत्यादि शामिल हैं। कुछ हद तक इन संबंधों में उन्मुक्तता का प्रभाव नज़र आता है। लेकिन यह मिथिला की लोक संस्कृति का विशिष्ट लक्षण नहीं हो सकता, कोई लोक संस्कृति स्त्री के शोषण की परंपरा या रीति को मान्यता नहीं देती। स्त्री के प्रति विकृत व दमनकारी रवैए का विरोध भी होता है हर शोषण के विरोध में उठी आवाज को रेणु ने अभिव्यक्ति दी है। महंत सेवादास के बाद रामदास मठ का महंत बन गया था। महंत बनते ही मठ की दासिन लक्ष्मी को अपने वश में करके उसके शरीर को भोगना चाहता है, कोई न कोई बहाना बनाकर वह लक्ष्मी को पास बुलाना चाहता है। लेकिन सेवादास द्वारा लक्ष्मी की किशोरावस्था में ही किए शारीरिक शोषण को वह कैसे भुला पाती? तब वह अनाथ और असहाय बच्ची थी, यौवन से पहले ही उसके शरीर पर उसके दादा जितने बड़े सेवादास ने अत्याचार किए थे। वह रोज रात उसके शरीर को नोचता खसोटता और एक निरीह बालिका सिवाय रोने के कुछ नहीं कर पाती थी। यादवटोली का किसन महंत के इस कुकर्म के बारे में कहता है, "अंधा महंत अपने पापों का प्राच्छिन्न कर रहा है। बाबाजी होकर जो रखेलिन रखता है, वह बाबाजी नहीं। उपर बाबाजी भीतर दगाबाजी। क्या कहते हो? रखेलिन नहीं, दासिन है? किसी और को सिखाना। पांच वर्ष तक मठ में नौकरी किया है, हमसे बढ़कर और कौन जानेगा मठ की बात? और कोई देखें या नहीं देखें, ऊपर परमेश्वर तो है। महंत जब लक्ष्मी दासिन को मठ पर लाया था तो वह एकदम अबोध थी, एकदम नादान। एक ही कपड़ा पहनती थी। कहां वह बच्ची और कहां पचास बरस का बूढ़ा गिद्ध। रोज रात में लक्ष्मी रोती थी-ऐसा रोना कि जिसे सुनकर पत्थर भी पिघल जाते थे। रोज सुबह लक्ष्मी दूध लेने बथान पर आती थी, उसकी आंखें कदम के फूल की तरह फूली रहती थीं। रात में रोने का कारण पूछने पर चुपचाप टुकुर-टुकुर मुंह देखनें लगती थी..... ठीक गाय की बाछी की तरह, जिसकी मां मर गई हो....। महंत द्वारा लक्ष्मी के यौन शोषण के प्रति गांव के लोगों के मन में गुस्सा था। विरोध का स्वर बहुत तीव्र नहीं था लेकिन महंत की इस घिनौनी हरकत पर लोग उसकी आलोचना करते हुए दिखते हैं, "महंत सेवादास इस इलाके के ज्ञानी साधु समझे जाते थे, सभी सास्तर-पुरान के पंडित! मठ पर आकर लोग भूख-प्यास भूल जाते थे। बड़ी पवित्र जगह समझी जाती थी। लेकिन जब महंत दासिन को लाया, लोगों की राय बदल गई।" जिस लक्ष्मी को महंत सेवादास ने लड़ाई-झगड़े और मुकदमे करके कानूनी तौर पर हासिल किया था। जब सेवादास के वकील ने महंत को समझाकर कहा था तब महंत साहब ने वकील को विश्वास दिलाते हुए कहा था - "वकील साहब, लक्ष्मी बेटी की तरह रहेगी....।"

लेकिन महंत ने अपनी लालसा को ज्यादा महत्व दिया बजाए इसके कि लक्ष्मी को एक बाप की तरह सुरक्षा प्रदान करता। एक पुरुष सत्तात्मक समाज स्त्री के बारे में कितना नृशंस और अत्याचारी हो सकता है, इसकी यह मिसाल है।

रेणु ने मिथिला अंचल की नारी की स्थिति की वास्तविकता को चित्रित किया है। नारी को सम्मान-जनक स्थान देने के पक्ष में वहां का पुरुष समाज आज भी तैयार नहीं है। चाहे वह सामाजिक अधिकार हो अथवा आर्थिक या सांस्कृतिक, हर बात में पुरुष की मर्जी को अहमियत दी जाती है।

फुलिया एक विधवा बेटी है, उसके दूसरे विवाह की चिंता करने के स्थान पर उसके द्वारा शरीर बेचकर आई कमाई पर उसके माता-पिता अपने घर का खर्च चला रहे हैं। उसके लिए दिवाने खलासी को टालते जा रहे हैं। फुलिया स्वयं भी खलासी से शादी करना चाहती है लेकिन मां-बाप के आगे वह कुछ नहीं बोल पाती। अपनी मामी के सामने वह दिल की बात खोल देती है, 'मामी, काली किरिया, किसी से कहना मत। खलासी जी इतने दिनों से दौड़ रहे हैं। बाबा को:

बात साफ-साफ नहीं कहते हैं। आखिर वह बेचारा कब तक दौड़ेगा। यहां नहीं तो कहीं और दूँडेगा। दुनिया में कहीं और तंत्रिमा की बेटी नहीं है क्या?" फुलिया की असहायता यहां पर व्यक्त हुई है। फुलिया की इस स्थिति को अन्य लोग भी समझते हैं, गांव की उसकी बूढ़ी काकी चिंता करते हुए दिखती है, वह चाहती है कि फुलिया की खलासी से शादी हो जाए तो उसका भी घर बस जाएगा। इसी लिए फुलिया की मां से वह कहती है "अरे फुलिया की माये! तुम लोगो को न तो लाज है और न धरम। कब तक बेटी की कमाई पर लाल किनारी वाली साडी चमकाओगी? आखिर एक हद होती है किसी बात की! मानती हूं कि जवान बेवा बेटी दुधार गाय के बराबर है। मगर इतना मत दूहो कि देह का खून भी सूख जाए।"

असहाय स्त्री की दयनीय स्थिति व पूरी त्रासदी को बयान करता है यह वक्तव्य।

बालदेव और लछ्मी व कमला और डॉ. प्रशांत कुमार के संबंध भी प्रेम संबंधों के दायरे में आते हैं। यहाँ तक कि कुंवारी कमला तो मां तक बनती है, लेकिन गांव के जन-जीवन में वैसा तूफान नहीं आता है। कालीचरण और मास्टरनी मंगलादेवी में भी प्रेम संबंध हैं। कुछ तो मिथिला के जन-जीवन में कृष्ण कथा व विद्यापति आदि के प्रेम शीतों के प्रभाव से व कुछ स्वयं लेखकीय दृष्टि में स्त्री-पुरुष संबंध चाहे उनका कोई भी स्वरूप हो, वे उन्मुक्त यौन संबंध ही क्यों न हों, उतने अगृहणीय, अनैतिक या असुंदर प्रतीत नहीं होते, जितने सामान्य उत्तर भारतीय नैतिक जीवन के लगते हैं। जहाँ पर स्त्री का दैहिक शोषण प्रेम रहित है, उन संबंधों को कुछ हद तक लेखक ने घृणित संबंधों के रूप में चित्रित कर प्रेम संबंधों के प्रति अधिक उन्मुक्त व तार्किक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

8.4.3 लोकगीतों में अभिव्यक्त लोक संस्कृति

मिथिला क्षेत्र की लोक संस्कृति में होली के समय जोगिया व भउजिया गान बहु प्रचलित हैं। इन लोकगीतों व अन्य लोक परंपराओं का चित्रण उपन्यास में अनेक स्थलों पर हुआ है। गाड़ीवान भउजिया गाते चलते हैं

चढ़ली जवानी मोश संग कड़के से
कब होइहैं गवना हमार रे भउजिया!

कमला की चूंकि कोई भौजी नहीं है, सो दिल का हाल किससे कहे? डॉ. के प्रति उसके मन में गहरा आकर्षण पैदा हो गया है। डॉ. को इस अंचल की लोक संस्कृति के प्रति भारी जिज्ञासा है। गाँव के समय-समय पर होने वाले मेलों-त्योहारों में वह खूब रुचि लेता है। खम्हार खुलने के दिन गाँव में विदापत नाच है, डॉ. की 'विदापत नाच' के प्रति जिज्ञासा से बालदेव हैरान है कि डॉ. इतना 'खराब' नाच क्यों देखेंगे। मृदंग बज रहा है

धिनक धिनक धा तिरकिट धिन्ना
धिनक धिनक धा तिरकिट धिन्ना

नाच में विकटा यानि विदूषक की भी भूमिका है। विदापत नाच में काम देवता मदन की भी अराधना है। डॉ. इस लोकगान से दंग है, तहसीलदार से वह रचयिता के संबंध में पूछता है और तहसीलदार का जवाब है

'आप भी डॉ. बाबू क्या पूछते हैं, तहसीलदार साहब हंसते हैं इनकी रचना के लिए भी क्या कोई तुलसीदास और बाल्मीकि की जरूरत है? खेतों में काम करते हुए तुक पर तुक मिला कर गढ़ लेता है।'

विदापत नाच देखने पर डॉ. को कोमल गीतों की पंक्तियां याद आती हैं 'पिया भइले डुमरी के फूल रे पियवा भइसे'। डॉ. को गांव का लोकगान देखकर बहुत देर से उलझे प्रश्न का उत्तर

भी मिल जाता है। डॉ. की उलझन थी विद्यापति के गीतो की रचना के संबंध में और उसे समाधान मिलता है ज़िंदगी भर बेगारी खटने वाले, अनपढ़ गंवार और अर्धनग्नो के कवित्त में कवि! तुम्हारे विद्यापति के गान हमारी टूटी झोपड़ियों में ज़िंदगी के मधुरस बरसा रहे हैं। ओ कवि! तुम्हारी कविता ने मचलकर एक दिन कहा था

‘चलो कवि बनफूलों की ओर
बनफूलों की कलियां तुम्हारी राह देखती हैं।’

रेणु के मिथिला अंचल की लोक संस्कृति के इस संवदेनशील चित्रण के कारण ही शायद नेमिचंद्र जैन ने कहा था - ‘भारतीय देहात के मर्म का इतना सरस और भावप्रवण प्रस्तुतिकरण हिंदी में संभवतः पहले कभी नहीं हुआ था।’ (‘अधूरे साक्षात्कार’) बिहार और उत्तर प्रदेश में होली का त्यौहार सर्वाधिक जोश-खरोश से मनाया जाता है और इन प्रांतों का सांस्कृतिक चित्र इस त्यौहार के चित्र के बगैर अधूरा है। सो रेणु ने भी ‘मैला आंचल’ में मेरीगंज में मनाई जाने वाली होली का खूब रंगीन चित्रण किया है। फुलिया नैहर में होली मनाना चाहती है, वह गाती है

नयना मिलानी करी ले रे सैया, नयना मिलानी करी ले!
अब की बेर हम नैहर रहबौ, जे दिल चाहय से करी ले!

होली ऐसा त्यौहार है, जिसमें स्त्री-पुरुष में रोमांस खुलकर प्रकट होता है, यहाँ तक कि थोड़ी बहुत छेड़-छाड़ भी सामाजिक रूप से स्वीकृत है

अरे बहियाँ पकड़ि झकझोरे श्याम रे
फूटल रेसम जोडी चूड़ी
मासकि गयी चोली, भींगावल साड़ी
आंचल उड़ि जाये हो
ऐसो होरी मचायो श्याम रे!

भारतीय देहात में सब कुछ सरस व मर्मस्पर्शी ही नहीं है, अशिक्षा और मानसिक पिछड़ेपन के कारण बहुत कुछ यंत्रणादायी भी है। डॉ. ने मेरीगंज समेत पन्द्रह गांवों का स्वास्थ्य की दृष्टि से जो अध्ययन किया है, उसके परिणाम बड़े कष्टकारी हैं। बला की खूबसूरत निरमला मात्र एक बूंद आई झूप के अभाव में अंधी हो गई है। एक भद्र महिला, अघेड़ स्त्री, गणेश की नानी व परवती की मां को गांववासी अपने अंधविश्वास में डाइन का दर्जा दे देते हैं।

डॉ. के हाथों गणेश व उसकी नानी दोनों का उद्धार होता है। गणेश को वह दवा लेता है और उसकी नानी को मौसी बनाकर उसके घावों पर मरहम लगाता है। लेकिन गणेश की नानी की गांववालों द्वारा हुई हत्या को वह नहीं रोक पाता।

उपन्यास में कुछ स्थलों पर लेखक ने समाज में हो रहे परिवर्तनों को तथ्यात्मक रूप में अंकित किया है। जैसे ‘कपडा राशन’ पर मिलता है। सारे गांव के लोग अर्धनग्न हैं। मर्दों के पैन्ट पहनने का रिवाज़ शुरू होने की सूचना है और बारह वर्ष तक के बच्चे नंगे ही रहत हैं।

होली में गाए जाने वाले ‘जोगीड़ा’ लोकगीत में थोड़ी अश्लीलता भी रहती है, मगर इसका सामाजिक व्यंग्य अधिक गहरा होता है। ‘गोदान’ का होली प्रसंग भी गोबर द्वारा गांव के शोषकों का चेहरा उघाड़ कर निर्मित हुआ था। ‘मैला आंचल’ के जोगीड़ा का भी यही स्वर है

जोगीड़ा सर S S S
जोगी जी ताक धिन-धिन
चर्खा कातो खदड पहनो, रहे हाथ में झोली
दिन दहाडे करो डकैती बोल सुराजी बोली - जागी जी-सर (प.ष्ठ 102)

1947 से पहले ही कांग्रेस का यह हाल रेणु ने चित्रित किया है। लेकिन कांग्रेस के इस पतन से सच्चे सुराजी बावनदादू जैसे लोग दुःखी हैं। डेढ़ हाथ का अज्ञात कुलशील, जन्मजात साधू! रेणु के 'मैला आंचल' के सभी जन-सेवक चरित्र अज्ञात कुलशील ही हैं - डॉ. प्रशांत और बावनदास दोनों अज्ञात कुलशील हैं। दोनों ही अंचल को राष्ट्र से जोड़ते हैं। डॉ. ग्रामवासिनी भारत माता से अनुप्रणित है।

आंचलिक संस्कृति के जो अन्य सच रेणु ने चित्रित किए हैं, उनमें मछली मारने का 'सिख' वैशाख-जेठ में 'तड़बन्ना' में तीन आने लबनी का चित्र, माने ताड़ी पीकर नशे में गाना-बजाना और इस गाने-बजाने में क्रांतिकारी भाव भी शामिल हो जाता है

अरे ज़िंदगी है किरांती से, किरांती में बिताये जा

दुनिया के पूंजीवाद को दुनिया से मिटाये जा। (पृष्ठ 131)

गाँव में 'जाट-जटिन' का खेल भी खेला जाता है। वर्षा के भी अनेक गीत मेरीगंज में प्रचलित हैं और रेणु ने साल भर का कोई ऐसा विशिष्ट अवसर नहीं छोड़ा है, जिसका लोकगीतों से रंगा चित्रण उन्होंने 'मैला आंचल' में न किया हो। केवल पारंपरिक त्यौहार या लोकगीत ही नहीं, राजनीतिक या सामाजिक घटनाओं के सांस्कृतिक रूपों को भी उन्होंने अनोखे रूप से चित्रित किया है। भगत सिंह ने असेंबली में बम फेंका और मिथिला अंचल का गांव झूम उठा 'बम फोड़ दिया फटाक से मस्ताना भगत सिंह'

और जवाहर लाल का वर्णन :

'भारत का डंका लंका में

बजवाया वीर जमाहिर ने।

भगत सिंह पर तो स्वाधीनता दिवस पर नौटंकी भी बनाई जाती है। लेकिन सुराज के बाद हिंदू-मुस्लिम दंगे भी हो रहे हैं और बालदेव को पन्द्रह बीस बरस पुराना स्वतंत्रता संग्राम का इस अंचल में प्रचलित साम्प्रदायिक सद्भाव का गीत याद आता है

अरे, चमके मन्दिरवा में चांद

मसजिदवा में बंसी बजे

मिली रहू हिंदू-मुसलमान

मान - अपमान तजो (पृष्ठ 188)

उपन्यास के अंत में जेल से रिहा होकर डॉ. प्रशांत फिर गांव आता है और प्रण करता है 'मैं फिर काम शुरू करूंगा। यहीं इसी गांव में। आंसू से भीगी धरती पर प्यार के पौधे लहलहाएंगे। मैं साधना करूंगा ग्रामवासिनी भारत माता के मैले आंचल तले!' (पृष्ठ 250)

इस प्रकार रेणु ने भारत माता के एक अंग के रूप में मेरीगंज को आधार बना कर 'मैला आंचल' का सृजन किया है। यह सृजन इसलिए अपूर्व रूप से सुंदर व मोहक है, क्योंकि रेणु का अपने अंचल से, उसके जन से, उसके मन से गहरा आत्मीय लगाव रहा है। 'मैला आंचल' का सृजन संदर्भ आंचलिक है, लेकिन इस सृजन की विश्व दृष्टि देश प्रेम से परिपूर्ण राष्ट्रीय दृष्टि है। इसलिए अंचल और राष्ट्र एक स्तर पर एक दूसरे में घुल मिल जाते हैं। रेणु अपनी भूमिका में कही गयी बातों को उपन्यास में सही सिद्ध कर देते हैं।

8.5 सारांश

इस इकाई में पहले तो अंचल और आंचलिकता की परिभाषा पर विचार किया गया है। फिर हिंदी के आंचलिक उपन्यासों की परंपरा का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। प्रमुख रूप से 'मैला आंचल' में आंचलिक पहलू किन-किन रूपों में प्रस्तुत हुए हैं, इस पर इकाई में चर्चा

की है। 'मैला आंचल' में रेणु ने एक बहुत ही महत्वपूर्ण तकनीक का प्रयोग किया है, जिसके द्वारा आंचलिक परिवेश के सौंदर्य, उसकी सजीवता और मानवीय संवेदनाओं को उजागर किया है। दृश्यों को चित्रित करने के लिए लेखक ने गीत, लय-ताल, वाद्य (नगाड़ा), ढोल, मनार, खंजडी नृत्य, लोकनाटक जैसे उपकरणों का बखुबी इस्तेमाल किया है। ध्वनि का जैसा, जितना सर्जनात्मक उपयोग 'मैला आंचल' में हुआ है, उतना शायद ही हिंदी के किसी अन्य उपन्यास में हुआ हो। 'ढाक ढिन्ना, ताक ढिन्ना', 'डा डिंगा'! 'रि-रिन्ता धिन-ता' आदि की अनुगूँज सारे उपन्यास में सुनाई देती है। ध्वनियों के द्वारा लेखक ने पूरे परिवेश को वाणी दी है। लोकगीतों की कड़ियाँ स्थान-स्थान पर लेखक की मनोभावना व विचार को ही अभिव्यक्त करती है।

मठ के वातावरण को चित्रित करने के लिए प्रातःकाल का कीर्तन, 'बीजक पाठक साहेब बन्दगी', का अभिवादन और 'सतगुरु हो! सतगुरु ! को बार-बार दोहराने, का उपयोग सफलता से किया गया है।

राजनीतिक पार्टियों की गतिविधियों की सरगर्मी को दिखाने के लिए तरह-तरह के नारों से सहायता ली गई है। कहीं 'किसान राज कायम हो'। 'मजदूर राज कायम हो'। 'गरीबों की पार्टी सोशलिस्ट पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी जिंदाबाद' की ध्वनि है तो कहीं 'जै हो गन्धी महतमा की जैहो' की गूँज सुनाई पड़ती है। जलसे-जुलूस और 'मीटिंगों' में भी ध्वनि और भाषणों का योगदान है। नारों को कहीं-कहीं गीतों में ढालने का उपक्रम भी है।

'मैला आंचल' में आंचलिक पहलू उभारने के लिए लेखक ने अंचल के भौगोलिक परिस्थितियों के चित्रण से लेकर सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण के चित्रण तक बड़ी गहराई व लगाव से प्रस्तुत किया है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि आंचलिकता और स्थानीय रंगत में अंतर होता है। स्थानीय रंग वाले उपन्यासों में उसका वातावरण कथा और चरित्र तत्वों से अविच्छिन्न नहीं होता। आंचलिक उपन्यास में उसका वातावरण उपन्यास के कथ्य और चरित्रों से अनिवार्यतः जुड़ा होता है। 'मैला आंचल' में मौजूद मेरीगंज गांव भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अन्य किसी गांव से भिन्न है। इसकी भिन्नता को आपने इस इकाई में रेखांकित अंचल की विशेषताओं के द्वारा समझा ही है। बोली-बानी की भिन्नता तथा गीतों, रीतिरिवाजों आदि के सूक्ष्म ब्योरो द्वारा मिथिला अंचल की लोक-संस्कृति की सांस्कृतिक व्याख्या के साथ-साथ बदलते हुए यथार्थ के परिप्रेक्ष्य का भी आपने इस इकाई में अध्ययन किया। मेरीगंज में मनाए जाने वाले तीज-त्यौहारों, गांव में मनाए जाने वाले ऋतुपर्वों, लोक-व्यवहार के विविध रूपों व मानवीय संबंधों के विशिष्ट रूपों के वर्णन के माध्यम से रेणु ने 'मैला आंचल' में अपने प्रिय अंचल का इतना गहरा व व्यापक चित्र खींचा है कि सचमुच यह उपन्यास हिंदी में आंचलिक औपन्यासिक परंपरा की सर्वश्रेष्ठ कृति बन गया है।

8.6 प्रश्न व अभ्यास

- 1) 'मैला आंचल' की रचना किस वर्ष आंचलिक उपन्यास के रूप में हुई? इस उपन्यास की रचना के बाद हिंदी में उपन्यासों की परंपरा का आरंभ क्यों माना जाता है?
- 2) अंचल और आंचलिकता की अवधारणा स्पष्ट करें।
- 3) फणीश्वर नाथ रेणु के कथा साहित्य का परिचय देते हुए उनकी रचना की प्रमुख विशेषताएं बताइए।
- 4) आंचलिकता के प्रमुख तत्वों के आधार पर 'मैला आंचल' की समीक्षा करें।
- 5) आंचलिक औपन्यासिक परंपरा में 'मैला आंचल' का स्थान निर्धारित करें।

इकाई 9 मैला आंचल में सामाजिक व राजनीतिक संदर्भ

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 मैला आंचल : राजनीतिक संदर्भ

9.2.1 ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन व्यवस्था

9.2.2 भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और विभिन्न राजनीतिक दलों की सक्रियता

9.2.3 राजनीतिक दल और शासक वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में कांग्रेस

9.2.4 भारतीय ग्रामीण समाज में वर्ग और वर्ण अंतर्विरोध

9.3 मैला आंचल : सामाजिक संदर्भ

9.4 सारांश

9.0 उद्देश्य

‘मैला आंचल’ उपन्यास के अध्ययन हेतु यह दूसरी और खंड की नौवीं इकाई है। इससे पहले की इकाई में आपने आंचलिक उपन्यासों की परंपरा में मैला आंचल सर्वप्रथम आंचलिक उपन्यास होने के साथ-साथ आंचलिकता की विशिष्टता, कलात्मकता और विशेषता को अपने में किस प्रकार समेटे हुए हैं, का विस्तार से अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप:

- स्वतंत्रतापूर्व की राजनीतिक स्थितियों से अवगत हो सकेंगे,
- स्वतंत्र भारत की शासन-व्यवस्था ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन-व्यवस्था के प्रभाव को किस प्रकार वहन करती रही, इसे समझ सकेंगे,
- भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में विभिन्न राजनीतिक दलों की सक्रियता और कुछ अतीराष्ट्रीयवादी दलों की सांप्रदायिक नीतियों और प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे
- कांग्रेस, जो कि राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में सबसे सक्रिय और महत्वपूर्ण दल के रूप में कार्यरत रही, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कैसे संपत्तिशाली वर्ग की पार्टी के रूप में टिकी रही, इस तथ्य से अवगत हो सकेंगे,
- जातिवादी राजनीति को प्रश्रय देने वाली सत्ताधारी पार्टी जातिवाद को बढ़ाकर किस प्रकार सत्ता में बने रहने की कोशिश करती है इसके लिए अपनाए जाने वाले हथकंडों से परिचित हो सकेंगे,
- राजनीति को देश के नेताओं ने भ्रष्ट बनाया तो गाँवों में धार्मिक मठों मठाधीश और धर्म के ठेकेदारों द्वारा नारी शोषण, छुआछूत को बढ़ावा देने जैसी विघातक प्रवृत्तियों के पनपने के कारण बनी नारी की दयनीय स्थिति से अवगत हो सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने ‘मैला आंचल’ उपन्यास के सृजन की पूर्व पीठिका देखी, लेखक के बारे में जाना और आंचलिकता की अवधारणा समझते हुए ‘मैला आंचल’ उपन्यास का आंचलिक संदर्भ में अध्ययन किया।

यद्यपि ‘मैला आंचल’ की अधिक चर्चा एक आंचलिक उपन्यास के रूप में हुई है, लेकिन आंचलिकता तो इसके रूप में अधिक है, अन्यथा विषयवस्तु के स्तर पर उपन्यास में राजनीतिक सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष व्यापक और राष्ट्रीय स्तर पर अधिक प्रबल रूप से चित्रित हुए हैं। यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि एक उपन्यास को राजनीतिक-सामाजिक संदर्भों में देखा जा सकता है या क्या साहित्य राजनीतिक-सामाजिक परिदृश्यों को चित्रित कर सकता है? क्या इससे उपन्यास या साहित्य की किसी भी विधा की कलात्मकता

खंडित नहीं होती? या फिर साहित्य और समाज या साहित्य और राजनीति का परस्पर संबंध क्या है? साहित्य में रूपवादियों या कलावादियों द्वारा यह आग्रह अक्सर किया जाता है कि साहित्य स्वयं में स्वायत्त इकाई है और समाज या राजनीति का दबाव इसकी स्वायत्तता को खंडित करता है। दूसरे शब्दों में वे साहित्य में शाब्दिक संरचना या इसकी शैली को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं व इसमें प्रस्तुत विषयवस्तु को कम। लेकिन यह दृष्टिकोण सही नहीं है।

साहित्य व कलाओं की स्वायत्तता या साहित्य के समाज या राजनीति से संबंधों का यह प्रश्न आज से नहीं, वरन अनेक दशकों से उठता आ रहा है और इसका कोई ऐसा उत्तर अभी तक नहीं मिला है, जिसे इस प्रश्न का कोई समाधान मान लिया जाए। अलबत्ता साहित्य की अन्य विधाओं की चर्चा फिलहाल छोड़ भी दी जाए तो उपन्यास विशेष रूपसे ऐसी साहित्यिक विधा है, जिनका मुख्य आधार ही समाज है। क्योंकि उपन्यास ऐसी विधा है जिसके संबंध में यह माना जाता है कि इसमें जीवन का अधिकाधिक संपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जाता है, जैसा प्राचीन काल में महाकाव्य में किया जाता था। चूंकि आधुनिक जीवन अत्यंत जटिल है, इसलिए उसकी अभिव्यक्ति के लिए काव्य रूप सीमित बन रहा था। अंततः गद्य रूप में उपन्यास इसका उपयुक्त माध्यम बना। जब हम आधुनिक जीवन की बात करते हैं तब जीवन में सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक सभी पक्ष शामिल रहते हैं। बल्कि कहना चाहिए कि वही उपन्यास अधिक सशक्त बन पड़े हैं, जिनमें किसी देश का, समाज का जीवन अधिक विविधता और पूर्णता में व्यक्त हुआ हो। इसीलिए फ्रांस में बाल्ज़ाक, रूस में ताल्स्टाय, जर्मनी में हर्मन हेसे, स्पेन में सर्वांतीज़, इंग्लैंड में टामस हार्डी, चार्ल्स डिकेन्स और भारत में (बंगला में) रविन्द्र नाथ टैगोर, मलयालम में तकषी शिवशंकर पिल्लै, हिंदी में प्रेमचंद, मराठी में दलित लेखक दया पवार आदि का महत्व अधिक है, क्योंकि इनकी रचनाएं अपने समय के समाज का व्यापक और यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं।

इस अर्थ में देखा जाए तो 'मैला आंचल' है ही एक सामाजिक व राजनीतिक उपन्यास। क्योंकि इस उपन्यास में भारतीय समाज और राजनीति के दो ऐसे ऐतिहासिक वर्षों का अंकन हुआ है, जो भारतीय समाज के इतिहास का अत्यंत महत्वपूर्ण काल है। उपनिवेशवाद से मुक्ति और नए राष्ट्र के निर्माण का संक्रमणकालीन दौर इस उपन्यास में अत्यंत विस्तार से और गहराई से चित्रित हुआ है।

अतः यह स्पष्ट है कि 'मैला आंचल' का अध्ययन और विश्लेषण राजनीतिक व सामाजिक आधारों पर किया जा सकता है। शायद यह कहना अधिक सटीक होगा कि 'मैला आंचल' उपन्यास की आत्मा को इस उपन्यास में रेणु द्वारा चित्रित सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों की पड़ताल के माध्यम से ही पकड़ा जा सकता है। उपन्यासकार रेणु ने अपने जीवन के व्यावहारिक कर्म व अपने लेखन या सृजन धर्मिता दोनों में ही गहन रूपसे सामाजिक व राजनीतिक सरोकारों से जुड़े हुए व्यक्तित्व की भूमिका निभाई है।

इस पाठ में 'मैला आंचल' को हम पहले राजनीतिक स्थितियों के संदर्भ में और फिर सामाजिक स्थितियों के संदर्भ में विश्लेषित करेंगे, हालांकि दोनों में स्पष्ट विभाजन रेखा खींचना कठिन है।

9.2 मैला आंचल : राजनीतिक संदर्भ

'मैला आंचल' उपन्यास का आरंभ ही राजनीतिक पृष्ठभूमि से होता है और उपन्यास का अंत भी राजनीतिक घटनाक्रम के एक दुखांत मोड़ से होता है। उपन्यास के राजनीतिक घटनाक्रम की अनेक परतें व अनेक स्तर चित्रित हुए हैं। इस अर्थ में 'मैला आंचल' उपन्यास को गहरे रूप में राजनीतिक उपन्यास भी कहा जा सकता है।

मोटे तौर पर राजनीतिक संदर्भ में उपन्यास में जिन स्थितियों का चित्रण हुआ है उन्हें क्रमवार इस प्रकार रख सकते हैं :

- 1) ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन व्यवस्था।
- 2) भारतीय स्वतंत्रता के राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय विभिन्न राजनीतिक दल व प्रवृत्तियां।
- 3) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का एक राजनीतिक दल और एक शासक वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में चित्रण।
- 4) भारतीय ग्रामीण समाज के वर्ग और वर्ण के अंतर्विरोधों का चित्रण।
- 5) स्वतंत्रता पूर्व व स्वातंत्र्योत्तर शासन व्यवस्था का चित्रण।

उपन्यास का आरंभ 1946 ई. के किसी समय से होता है और अंत अप्रैल 1948 के आस पास। 1948 में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत कांग्रेसी मंत्रिमंडल बन गए थे और 15 अगस्त 1948 के विभाजन और सत्ता परिवर्तन के उपरांत ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से प्रत्यक्षतः हट जाने, किंतु शासन व्यवस्था उसी ब्रिटिश व्यवस्था के रूप में बनी रहने की स्थिति में स्वातंत्र्योत्तर शासन व्यवस्था का आरंभ हुआ। दोनों ही स्थितियां एक संक्रमणकालीन दौर की उपज है और इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है कि ये हमारे देश की राजनीति के व्यवस्थागत रूप को स्पष्ट करने वाली हैं। ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने जो शासन व्यवस्था भारत में स्थापित की, 1948 में क्या हम उस व्यवस्था की गुलामी से भी मुक्त हुए या सिर्फ चमड़ी का रंग बदला? गोरे शासकों के स्थान पर भूरी या काली चमड़ी के लोगों ने शासन की बागडोर एक 'स्वतंत्र' राष्ट्र के रूप में संभाली? वस्तुतः व्यवस्था वही बनी रही, जो उपनिवेशवाद ने अपनी ज़रूरतों के लिए निर्मित की थी। क्या एक ही व्यवस्था उपनिवेशवाद और उपनिवेशवाद से मुक्ति प्राप्त राष्ट्र - दोनों की आकांक्षाओं या हितों की पूर्ति कर सकती है? यह ऐसा ज़रूरी सवाल है, जिसे राष्ट्रीय आज़ादी के शोर में दबा दिया जाता है। लेकिन रेणु ने 'मैला आंचल' में ऐसे सवालों से बचने की कोशिश न करके, उन्हें पूरी ईमानदारी व सृजनशीलता से स्वतंत्रता प्राप्ति के सात वर्ष उपरांत ही उभार दिया था। लेकिन रेणु द्वारा सृजनात्मक रूप से उपस्थित किए गए यथार्थ सवालों को उस समय उपन्यास की आंचलिकता के घटाटोप में छिपा दिया गया। लेकिन अब जबकि देश की राजनीतिक स्थितियां एक बड़ा मुद्दा व क्रूर रूप गहण कर रही है और देश न सिर्फ आर्थिक स्तर पर एक नव-औपनिवेशिक परतंत्रता की ओर बढ़ रहा है, बल्कि तथाकथित जनतांत्रिक व्यवस्था की पोल भी खुलती नज़र आ रही है तो 'मैला आंचल' का खुली दृष्टि से अध्ययन आवश्यक हो गया है। रेणु ने तो उसी समय ही औपनिवेशिक व्यवस्था को बिना परिवर्तन के अपनाने के खतरों से आगाह कर दिया था।

9.2.1 ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन व्यवस्था

उपन्यास का आरंभ ही ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था के जनमानस में अंकित बिंब से होता है, उपन्यास का आरंभिक वाक्य ही इस बिंब को शब्दों में बांधता है 'मलेटरी ने चैथरु को गिरफ्तार कर लिया है।' (पृष्ठ 9) गांव में यह खबर आग की तरह फैलती है। अगले पैसे में लेखक ने इसे स्पष्ट करने का यत्न भी किया है कि इस गांव में न तो फौजियों का कोई उत्पात हुआ, न ही 1942 जैसे जन-आंदोलन ही इस गांव तक पहुंचे, लेकिन खबरें अस्पष्ट अफवाहों का रूप लेकर ज़रूर गांव में पहुंची और इन खबरों या अफवाहों में शामिल था - पूरे गांव को घेर कर आग लगाना, एक बच्चे का भी न बच पाना, 'महीनों लोगों की लाशों का सड़ना' 'मलेटरी का पहरा' आदि। 'मलेटरी' शब्द ही ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था की देन है।

ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था का जो पहला लक्षण उपन्यास के आरंभ में ही चित्रित हुआ है, वह है - औपनिवेशिक शासन की भयंकर दमन नीति। इस दमन नीति का देश के सुदूर गांवों तक में इतना आतंक है कि मलेटरी आने की अफवाह मात्र से गांव वाले स्वतंत्रता सेनानी बालदेव को रस्सी से बांध लेते हैं अर्थात् दमन की नीति के आतंक से जनमानस की मानसिक गुलामी भी गहरे में जड़े पकड़ लेती हैं। यह बात अलग है कि जब शासकों की ओर से बालदेव

को सम्मान दिया जाता है तो गांव वालों के लिए वह पूज्य हो जाता है। यह सिक्के का दूसरा पहलू भी मानसिक गुलामी का ही दूसरा रूप है। जनमानस व जन को शारीरिक व मानसिक रूप से गुलाम बनाना - यह ब्रिटिश औपनिवेशिक दमन नीति का मुख्य उद्देश्य था, कुछ दमन तो उसने कुछ अन्य दंगों से हासिल किया।

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन व्यवस्था का एक अन्य लक्षण था, उसकी सामाजिक या मानव मात्र के प्रति असंवदेनशीलता। औपनिवेशिक शासन का लक्ष्य था उपनिवेशों का आर्थिक शोषण, वह तभी संभव था, यदि उसे मानसिक स्तर पर गुलाम व पंगु बनाया जाए। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन व्यवस्था अपने इस लक्ष्य में काफी सफल रही। मानव मात्र के प्रति संवेदनहीनता के कारण ही मार्टिन की नव ब्याहता पत्नी मेरी की मृत्यु हो जाती है और मार्टिन ब्रिटिश शासन व्यवस्था का अंग होकर भी कुछ नहीं कर पाता। अपनी पत्नी मेरी की याद में वह अस्पताल बनवाना चाहा है, वह भी नहीं हो पाता, उसकी सारी कोशिशों के बावजूद उसके भाग्य में निराशा में पागल होकर मरना ही लिखा है, और ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था को अपने ही अंग के मरने की कोई चिंता नहीं है। मार्टिन के मरने के 35 साल बाद ही मेरीगंज में मलेरिया सेंटर खुलने की बात होती है।

उपनिवेशवादी दमन व्यवस्था का एक रूप है - सेना या पुलिस द्वारा यातना देना, जेल भेजना या अन्य प्रकार से दंडित करना। इसका जनमानस पर प्रतिबिंब तो उपन्यास के आरंभ में ही मिल जाता है, लेकिन इसके अनेक ठोस उदाहरण उपन्यास में जहाँ-तहाँ मिलते हैं। जैसे स्वतंत्रता सेनानी बालदेव जब गांव वालों को अपनी पीठ उछाड़ कर दिखाते हैं तो न सिर्फ जन सामान्य वरन् देश के स्वतंत्रता सेनानियों पर कैसी-कैसी यातनाएं ब्रिटिश शासन के अंतर्गत पुलिस द्वारा दी जाती थीं, वे भी चित्रित होती हैं। कैसे भगत सिंह आदि देशभक्तों व क्रांतिकारियों को उपनिवेशवाद ने फांसी पर चढ़ा कर शहीद किया, इसका अंकन भी उपन्यास में है। 1942 के मुक्ति आंदोलन को ही कितने अत्याचारों द्वारा दबाया गया, इसकी चर्चा भी यहाँ मिलती है।

जमींदारों और तहसीलदारों द्वारा किसानों पर अत्याचार करके लगान वसूल करने के लिए क्रूर दमन का चक्र चलाना, जैसे अनेक प्रसंगों को उपन्यास में अंकित किया है। तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद मल्लिक जो कायस्थ टोली के मुखिया हैं, के खानदान में तीन पुत्रों से तहसीलदारी चली आ रही है। इस तहसीलदारी से वे तो एक हजार बीघे के बड़े काश्तकार बन गए हैं, लेकिन उनकी यह इतनी बड़ी जोत बनी है, गरीब किसानों पर जुल्म के द्वारा। बाढ़ या सूखे से जब गरीब किसान की फसल नष्ट हो जाती है तो वह लगान अदा नहीं कर सकता, लगान अदा नहीं कर सकता तो ज़मीन रेहन रखे और एक बार ज़मीन रेहन रखी तो वह गई बड़े ज़मींदारों के पास। किसान अपनी ज़मीन खोता चला जाता है और ज़मींदारों का वह गुलाम बनकर रह जाता है। बड़े ज़मींदार - अंग्रेज़ी शासन व्यवस्था गांवों में प्रतिष्ठित करने के मुख्य स्तम्भ रहे हैं। अनेक गांवों के लोगों ने शायद पूरे ब्रिटिश शासन काल में कभी अंग्रेज़ों का मुंह भी न देखा है। इन गांववासियों ने अपने ही गांव के बड़े ज़मींदारों, साहूकारों की ही गुलामी भोगी है, लेकिन यह ज़मींदार/साहूकार वर्ग पहले से ही अत्याचारी था, कुछ उपनिवेशवादी व्यवस्था ने अपने हित में इन्हें ताकत देकर शोषण व्यवस्था का पुर्जा बनाया।

मेरीगंज गांव में कुल दस्तखत करने लायक पढ़े-लिखों की संख्या दस बताकर औपनिवेशिक शिक्षा व सांस्कृतिक नीति भी लेखक ने उद्घाटित कर दी है। उपनिवेशवाद को पढ़े लिखे नागरिकों की नहीं : अनपढ़ समूहों की ज़रूरत थी या फिर मैकाले व्यवस्था के अधीन 'बाबू' लोगों की, क्योंकि जब भारतीय सचमुच शिक्षित हो जाते हैं तो डॉ. प्रशांत कुमार की तरह जन सेवा व जनचेतना जगाने में लग जाते हैं, जिससे व्यवस्था को हमेशा खतरा ही रहता है। फणीश्वरनाथ रेणु ने ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन व्यवस्था को अपनी कथा के सहज विकास में बड़े स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया है।

ब्रिटिश शासन व्यवस्था के चित्रण के साथ-साथ रेणु ने अधिक सकारात्मक रूप से व काफी विस्तार से ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध व बाद में 1948 के सत्ता परिवर्तन के बाद देशी हाथों से परिचालित उसी व्यवस्था के विरुद्ध चल रहे जन-संघर्षों को भी चित्रित किया है।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष के रूप में कांग्रेस पार्टी के अनेक नेताओं का परोक्ष रूप में, या उनके कार्यकलापों की चर्चा के रूप में चित्रण हुआ है। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू व बाबू राजेन्द्र प्रसाद के जनमानस पर उभरे बिंब और उनके कार्यकलापों की चर्चा अधिक हुई है। बाबू राजेन्द्र प्रसाद चूंकि बिहार के सबसे प्रमुख राजनेता थे, अतः उनकी चर्चा महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू के साथ स्वाभाविक ही है। कांग्रेस के निस्वार्थ व ईमानदार कार्यकर्ताओं के रूप में 'डेढ़ हाथ' के बावनदास व बालदेव प्रसाद का अधिक उल्लेख हुआ है। दूसरी ओर उन दिनों कांग्रेस पार्टी के अंग के रूप में, लेकिन अधिक जुझारू संघर्ष का बिगुल बजाने वाले दल के रूप में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का भी उपन्यास में चित्रण है। जय प्रकाश नारायण इस दल के नेता थे और वे भी बिहार के ही थे, इसलिए उनका जिक्र भी ससम्मान हुआ है। स्वयं रेणु जयप्रकाश नारायण से प्रभावित थे व उनके आंदोलन के समर्थक भी। गांव में सोशलिस्ट पार्टी का नेतृत्व संभालता है - कालीचरण यादव

'कॉमरेड कालीचरण और कॉमरेड बासुदेव! सुशर्लिंग पार्टी! रास्ते में कालीचरण बासुदेव को समझाता है, यही पार्टी असल पार्टी है। गरम पार्टी है। किरान्ती दल का नाम नहीं सुना था?... बम फोड़ दिया फटाक से मस्ताना भगत सिंह। यह गाना नहीं सुने हो? वही पार्टी है। इसमें कोई लीडर नहीं। सभी साथी हैं, सभी लीडर हैं।' (रेणु - मैला आंचल, पृ. 74)

1946 में बिहार के सुदूर गांवों में भगत सिंह की एक क्रांतिकारी के रूप में धूम थी, यह भी रेणु ने उपन्यास में कई स्थलों पर संवेदनशीलता से अंकित किया है। कम्युनिस्ट विचारों के प्रतिनिधि चरित्र चलित्तर कर्मकार भी उपन्यास में उपस्थित हैं तो राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ भी अपनी काली टोपियों के साथ केवल हिंदू राष्ट्र को बनए जाने की कोशिशों के साथ मौजूद हैं। लेकिन स्वतंत्रता आंदोलन की अमूर्त बातें एक ओर, जब संथाल आदिवासियों व गांव के प्रभुताशाली वर्ग ज़मींदारों के बीच संघर्ष होता है, 1948 से पहले तो सोशलिस्ट कालीचरण और कांग्रेसी बालदेव सभी गांव के प्रभुताशाली वर्गों का साथ देते हैं। संघर्ष में चार संथाल खेत रहे तो तहसीलदार पार्टी के दस। लेकिन संथाल टोली लूट ली गई। नौ सन्थाल गिरफ्तार भी कर लिए गए गैर सन्थाल कोई गिरफ्तार नहीं किया गया, क्योंकि पुलिस भी प्रभुत्वशाली वर्गों के साथ थी। केवल डॉ. प्रशांत कुमार की सहानुभूति संथालों के साथ थी, लेकिन उसके बारे में मिथ्या प्रचार किया गया कि उसने सन्थालों के विरुद्ध रिपोर्ट दी।

आज़ादी क्या थी या स्वराज्य क्या था, इसके जशनों की क्या सार्थकता थी, इसे रेणु ने उपन्यास के दूसरे खंड के एक ही वाक्य में स्पष्ट कर दिया है। संथाल ज़मींदार संघर्ष हुआ, ब्रिटिश उपनिवेशवादी काल में और इसका अदालती फैसला हुआ देशी शासन में रेणु ने इसका चित्र खींचा है

मुकदमा में भी सुराज मिल गया।

सभी संथालों को दामुल होज (आजीवन कैद) हो गया। (वही, पृ.177)

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय राजनीतिक दलों व शक्तियों की मानसिकता क्या थी, आदिवासी समुदाय के प्रति असंवेदनशीलता के क्या कारण थे, सन्थालों के साथ क्यों अन्याय हुआ, इसे रेणु ने बड़ी ही संवेदनशीलता से उपनिवेशवाद व स्वराज की सीमारेखा के इस ओर घटी एक घटना, व सीमारेखा के दूसरी ओर हुए अदालती निर्णय से अंकित कर दिया था। ऐसे सूक्ष्म चित्रण के उदाहरण हिंदी उपन्यास में बहुत कम मिलते हैं। उपन्यास के अंत तक आते-आते ईमानदार कांग्रेसी कार्यकर्ता बावनदास का हश्र भी संथाली आदिवासियों जैसा ही होता है।

रेणु ने 'मैला आंचल' में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय राजनीतिक शक्तियों का चरित्र अत्यंत सटीक और वस्तुगत ढंग से अंकित किया है।

9.2.3 राजनीतिक दल और शासक वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में कांग्रेस

ब्रिटिश उपनिवेशवाद के खिलाफ भारतीय जनता के स्वाधीनता संग्राम के नेतृत्व का श्रेय प्रायः भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को दिया जाता है। काफी हद तक यह बात सही भी है, लेकिन कांग्रेस के वर्ग चरित्र की अधिक चर्चा नहीं की जाती। ब्रिटिश उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष केवल कांग्रेस पार्टी ने ही नहीं, वरन् अनेक शक्तियों ने किया। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से लेकर 1947 के सत्ता परिवर्तन तक स्वाधीनता संघर्ष में अनेक राजनीतिक धाराएं, विचार व शक्तियां सक्रिय थीं। 1914 का 'गदर' आंदोलन, 1920-30 का क्रांतिकारी आंदोलन आदि अनेक ऐसे आंदोलन भी थे, जिनका कांग्रेस से कोई संबंध न था। ऐसा भी हुआ है कांग्रेस को एक व्यापक मंच समझ कर अनेक राजनीतिक विचार व शक्तियां इसके भीतर ही सक्रिय रहीं, जैसे सोशलिस्ट पार्टी, नेता जी सुभाष चंद्र बोस की गरम विचारधारा आदि। लेकिन कांग्रेस पार्टी की मुख्य धुरी संपत्तिशाली वर्ग की पार्टी के रूप में टिकी रही। थोड़े बहुत प्रगतिशील विचारों को यह पार्टी भीतर समाहित कर उन्हें मुख्य धुरी के इर्द गिर्द अनुकूलित करती रही। इसीलिए कांग्रेस पार्टी ने अपनी संकल्पना एक भावी शासक दल के रूप में ही की और ब्रिटिश उपनिवेशवाद के अंतर्गत ही इस पार्टी ने शासन करने की शिक्षा भी प्राप्त की। 1935 के भारत अधिनियम के अंतर्गत 1937 में बनी कांग्रेस सरकारें, 1946 में बनी कांग्रेस सरकारों ने उपनिवेशवादी व्यवस्था के अंतर्गत ही शासन करना सीखा था। यही कारण है कि 1947 का सत्ता परिवर्तन होते ही कांग्रेस पार्टी ने व्यवस्था परिवर्तन की बात छोड़ दी। समाजवाद का लुभावना नारा यह अवश्य लगाती रही, लेकिन शासन व्यवस्था उसे उपनिवेशवादी ही रास आई। इसलिए स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व करने वाली कांग्रेस पार्टी और 1947 के बाद शासन करने वाली शासक पार्टी के रूप में कांग्रेस दो अलग भूमिकाएं निभाती नज़र आती है, यद्यपि यह दोनों भूमिकाएं वस्तुतः अलग भूमिकाएं नहीं हैं। कांग्रेस पार्टी के स्वाधीनता से पहले की भूमिका में ही स्वाधीनता के बाद की भूमिका के बीज मौजूद थे। इसीलिए 1948 के तुरंत बाद आदिवासी संथालों को सज़ा भी होती है। 'चलित्तर' कर्मकार के वारंट भी वापिस नहीं होते, सबसे ऊपर यह कि गांव में बेहद लोकप्रिय जनसेवक डॉ. प्रशांत कुमार को शासक कांग्रेस द्वारा गिरफ्तार कर जेल भी भेजा जाता है।

कांग्रेस शासन में ताकत कालाबाज़ारी कांग्रेसी दुलार चंद कापरा जैसे लोगों के पास है। सत्ता के तंत्र वही हैं ३ पुलिस, इंस्पेक्टर आदि। और यही कापरा अपने काला बाज़ार के धंधे के लिए गांधी की शहादत के दिनों में ही गांधी के प्रिय शिष्य भगवान बावनदास को भी गाड़ियों के नीचे ज़िंदा ही कुचलवा डालता है। रेणु ने अप्रैल 1948 के आसपास उपन्यास का अंत किया है और सत्ता परिवर्तन के 8-9 महीनों में ही कांग्रेस पार्टी के शोषक-शासक रूप को अच्छी तरह उद्घाटित कर दिया है।

9.2.4 भारतीय ग्रामीण समाज में वर्ग और वर्ण अंतर्विरोध

इस विषय पर विस्तृत चर्चा तो पाठ के अगले अंश में की जाएगी, लेकिन रेणु ने 'मैला आंचल' में मेरीगंज गांव के समाज का बहुत ही सटीक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। गांव में उन्होंने बारह वर्ण होने की स्थिति बताई है व तीन प्रभुताशाली समुदाय चित्रित किए हैं : (क) कायस्थ या मालिक टोला बड़े काश्तकार, (ख) राजपूत टोली बड़े मध्यम काश्तकार, (ग) यादव टोली - छोटे/मध्यम काश्तकार।

आज जो बिहार की जातिवादी राजनीति है व इसे जातिवाद ने किस प्रकार जाति व वर्ग अंतर्विरोधों के भ्रम में डाल दिया है, लगभग ऐसी ही स्थिति रेणु ने चार दशक पहले ही चित्रित कर दी है। आदिवासी संथालों के विरुद्ध संघर्ष में गांव के ये तीनों प्रमुख टोले एक ही वर्ग

अर्थात् शोषक वर्ग की भूमिका निभाते हैं, जबकि संथाल शोषित वर्ग की स्थिति में हैं। रेणु ने 'मैला आंचल' में 1946 से 1948 तक के अत्यंत निर्णायक दो वर्षों का चित्रण भारतीय समाज के चित्रण के संदर्भ में किया है। सबसे महत्वपूर्ण घटना इस बीच 1948 के सत्ता परिवर्तन के रूप में घटती है। रेणु ने स्वतंत्रतापूर्व स्थिति का चित्रण उपन्यास के पहले खंड में किया है और स्वातंत्र्योत्तर स्थितियां उपन्यास के दूसरे खंड में हैं। क्या इन दोनों स्थितियों में कोई अंतर नज़र आता है? यह एक महत्वपूर्ण और विचारणीय प्रश्न है।

इन दोनों स्थितियों के बीच की कड़ी है - गांव में आदिवासी संथाल बनाम जमींदार टोली में वर्ग संघर्ष, जिसमें दोनों पक्षों के कई लोग मारे जाते हैं और देशी पुलिस का दमन संथालों को झेलना पड़ता है। उनका गांव भी लूटा जाता है और उन्हीं के लोग गिरफ्तार भी किए जाते हैं। अगर सचमुच भारत स्वाधीन हो गया है तो इन संथालों को सबसे पहले न्याय मिलना चाहिए था, लेकिन उनको सुराज मिलता है 'दामुल हौज' अर्थात् आजीवन कारावास के रूप में। यहाँ सांकेतिक रूप में ही रेणु बहुत गहरी बात कह गए हैं। भारत के मेहनतकशों, शोषितों के लिए तो भारतीय स्वाधीनता का अर्थ है दामुल हौज और भारतीय शोषकों के लिए स्वाधीनता का अर्थ है सत्ता का नशा और सुख। कई स्तरों पर तो ऐसा भी लगता है कि स्थितियां पहले से भी बदतर हुईं और वह भी चार छः महीनों की आज़ादी के भीतर ही। गांधी के शिष्य बावनदास को भारत पाकिस्तान-सीमा पर कांग्रेसी कालाबाजारी कापरा द्वारा जीवित ही कुचलवा दिया जाना, डॉ. प्रशांत कुमार की गिरफ्तारी आदि की स्थितियां तो ब्रिटिश उपनिवेशवादी व्यवस्था से भी बदतर व्यवस्था बनने के संकेत देती हैं।

स्थितियों के गहरे विश्लेषण के बाद रेणु और मैला आंचल के संबंध में हम कह सकते हैं कि रेणु ने 'मैला आंचल' उपन्यास के माध्यम से भारतीय समाज के राजनीतिक रूपांतरण के दो अत्यंत महत्वपूर्ण व निर्णायक वर्षों का बड़ी ही सूक्ष्मता और संवेदनशीलता से चित्रण किया है। भारतीय स्वाधीनता संग्राम का सारतत्त्व रेणु ने 'मैला आंचल' में प्रस्तुत कर दिया है। इस अर्थ में 'मैला आंचल' का एक राजनीतिक उपन्यास के रूप में भी दीर्घकालिक महत्व स्थिर रहेगा।

9.3 मैला आंचल : सामाजिक संदर्भ

'मैला आंचल' का सामाजिक संदर्भ भी उपन्यास के प्रथम अध्याय से ही उद्घाटित होने लगता है। मेरीगंज गांव बाहर की दुनिया से इतना अधिक कटा है कि 1942 के जन-आंदोलन की खबरें भी यहाँ अफवाहों के रूप में ही अधिक पहुंची हैं, वास्तविकता के रूप में कम।

दूसरी बात जो स्पष्ट रूप से शुरू में ही उभर आती है वह है गांव का जातिगत विभाजन। तीन प्रमुख टोलों - मालिक यानि कायस्थ टोला, राजपूत टोला और यादव टोला। इसका समाज-वैज्ञानिक विश्लेषण अगली इकाई में प्रस्तुत हुआ है जहाँ रेणु ने बताया है कि इस बड़े गांव में बारह वर्ण के लोग रहते हैं और प्रभुताशाली दो वर्णों या जातियों राजपूतों व कायस्थों में पुश्तैनी मनमुटाव व झगड़े रहते हैं, संपत्ति व सत्ता को लेकर भी। ब्राह्मण कम संख्या में हैं। यादव खुद को यदुवंशी क्षत्रिय मानते हैं। लेकिन राजपूत उन्हें क्षत्रिय नहीं मानते। वास्तव में 'मैला आंचल' के मेरीगंज गांव के माध्यम से पूरे बिहार की जाति-व्यवस्था का एक चित्र आंखों के सामने उभर आता है। यदि इस चित्र को ठीक से समझ कर जातिगत अंतर्विरोधों को ठीक तरह सुलझाया जाता तो बिहार की आज जो जातिगत हिंसा की भयंकर स्थिति है वह न बनती। इन अंतर्विरोधों को सुलझाना तो दूर रहा, ठीक से समझने का प्रयास भी नहीं हुआ।

राजपूत व कायस्थ आदि उच्च जातियां सिर्फ जाति-उच्चता के बोध के कारण ही नहीं है वरन् इनकी जातिगत उच्चता के बोध में आर्थिक व राजनीतिक सत्ता की शक्ति भी शामिल है। बिहार में 'गुमट टोली' निम्न जातियों का बोधक शब्द है लेकिन 1954 में ही यादवों ने इतनी सामाजिक सत्ता हासिल कर ली थी कि उन्हें अब 'गुमट टोली' कहने की हिम्मत

कोई नहीं करता। लेकिन जो अन्य निम्न समझी जाने वाली जातियाँ गाँव में हैं, उन्हें उच्च जाति के लोग 'गुमट टोली' कहते हैं, जबकि वे जातियाँ स्वयं को क्षत्रिय मानती हैं, जो उनकी जाति नामों से जाहिर है। ये जातियाँ हैं - पोलिया-टोली, तन्जिमा (ततका) छत्री टोली, गहलोत छत्री टोली, कुर्म छत्री टोली, धनुकधारी छत्री टोली, कुशवाहा छत्री टोली और रैदासी टोली।

कथित उच्च जातियाँ तो कथित निम्न जातियों को 'निम्न' कहती ही हैं, स्वयं निम्न समझी या कही जाने वाली जातियों में भी अपनी जाति को अन्य जाति से उच्च समझने की भावना प्रबल रूप में विद्यमान है और ये जातियाँ समाज से उपेक्षित होकर भी आपस में एकता या सामाजिक व्यवहार नहीं रखती। उधर डेरे में महंत लोग स्त्री को दासिन बना कर रखते हैं, यह भी उसे निम्न जाति के स्तर तक खींचना है, स्त्री का डेरे में दैहिक शोषण कर उसे लगभग रखैल की स्थिति तक गिरा दिया जाता है। निम्न जातियों में कितनी गरीबी है यह महंत सेवादस द्वारा डेरे पर भंडारे की घोषणा के समय पता चलता है, जब यह बताया जाता है कि 'तन्जिमा, गहलोत और पोलिया टोली के अधिकांश लोगों ने पूरी-जलेबी कभी चखी भी नहीं।' (पृष्ठ 23) 'हरिजन' शब्द भी निम्न जातियों के लिए इस समय प्रचलित था क्योंकि बालदेव जी सबको 'जी' लगाकर बुलाते हैं, और इनमें 'हरिजन जी' का भी उदाहरण शामिल है।

ग्रामीण समाज में स्त्री-पुरुष संबंधों पर उपन्यासकार ने खूब ध्यान केंद्रित किया है। 'मैला आंचल' के स्त्री पुरुष संबंधों के चित्रण को देखकर तो लगता है मिथिला अंचल में इन संबंधों में काफी उन्मुक्तता है। डेरे के महंत खुले में लछमी या बाद में नए महंत रामपियारी से संबंध रखे हैं और इन संबंधों को सामाजिक स्वीकृति भी है। बालदेव लछमी प्रेम संबंधों या कालीचरण मंगला प्रेम संबंधों पर भी कोई ज्यादा टीका टिप्पणी नहीं होती। निम्न जातियों के अनेक स्त्री-पुरुष संबंधों में ब्याहता संबंधों के दायरे के बाहर भी काफी उन्मुक्तता के व्यवहार का चित्रण हुआ है। इन सबसे बढ़कर रेणु ने डॉ. प्रशांत कुमार व कमला के प्रेम संबंधों में इस हद तक उन्मुक्तता दिखाई है कि कमली के बिना ब्याह के मां बनने पर भी इस सुदूर पिछड़े गांव में कोई तूफान नहीं आता। हालांकि दोनों का प्रेम सच्चा है और बच्चा होने से पहले ब्याह न हो पाने का कारण प्रशांत की गिरफ्तारी और कारावास है। इस अर्थ में 'मैला आंचल' को रोमांटिक उपन्यासों की परंपरा में भी रखा जा सका है।

गाँव की शैक्षिक स्थिति का भी चित्रण हुआ है। पूरे गाँव में कुल दस लोग ऐसे हैं जो दस्तखत कर सकते हैं, उन्हीं में तहसीलदारी की शिक्षा भी शामिल है। नये पढ़ने वाले कुल पन्द्रह हैं। जिसका अर्थ यह है कि 1946 तक आते आते शिक्षा के प्रति जागृति की भावना उठने लगी थी।

गांव की मुख्य पैदावार धान, पाट और खेसारी बताई गई है और कभी-कभार रबी की फसल आधी होने की सूचना भी है।

लेकिन गांव का चित्र केवल जातिगत विभाजन या पिछड़ेपन की स्थिति के चित्रण में ही पूरा नहीं होता। गांव का चित्र पूरा होता है - गांव के वर्ग विभाजन के चित्रण से। मालिक टोली व राजपूत टोली व कुछ हद तक यादव टोली गांव का प्रभुत्वशाली वर्ग है - आर्थिक रूप में भी और राजनीतिक तथा सांस्कृतिक रूप में भी, आर्थिक रूप में विश्वनाथ प्रसाद (कायस्थ) हजारी बीघे के काश्तकार हैं, ठाकुर रामकिरण सिंह (राजपूत) लगभग साढ़े तीन सौ बीघे के ज़मींदार हैं और खेलावन सिंह यादव भी डेढ़ सौ बीघा ज़मीन के मालिक हैं। दूसरी ओर गांव के बाकी लोग गरीब हैं साधनहीन हैं, खेतों पर मज़दूरी करते हैं या किसी अन्य स्थान पर मज़दूरी तलाश करते हैं। एक और संथाल आदिवासी हैं, जिनकी ज़मीन प्रभुत्वशाली वर्ग के टोलों ने शोषण से छीन ली है और यह गांव के वर्ग विभाजन को वर्ग-संघर्ष के स्तर तक ले जाता है। इस वर्ग संघर्ष में अत्याचार संथाल आदिवासियों पर ही होते हैं।

रेणु ने बिहार के जाति विभाजन के विकल्प रूप में जो चरित्र रखे हैं, उन्हें जाति विहीन चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया है, जिनकी जाति का कुछ पता नहीं है, लेकिन जो अपने कार्य-व्यवहार से स्वयं को सर्वश्रेष्ठ मानव का उदाहरण बनाकर प्रस्तुत करते हैं और लेखक का संदेश सृजनात्मक रूप से देते हैं कि जाति का कुछ मतलब नहीं है, मानव का श्रेष्ठ मानव होना सबसे बड़ी बात है। ये दो सर्वश्रेष्ठ मानव हैं - डॉ. प्रशांत कुमार, जो नदी में फेंके गए मिले हैं और कांग्रेस कार्यकर्ता बावनदास।

ग्रामीण समाज के अन्य जो संदर्भ उपन्यास में चित्रित हुए हैं, उनमें गांव के सांस्कृतिक पर्यावरण का चित्र भी शामिल है। त्योहारों के अवसर पर और अन्य अनेक अवसरों पर गांव के जीवन का रंगबिरंगा सांस्कृतिक रूप 'मैला आंचल' में अच्छी तरह उद्घाटित हुआ है। समाज में प्रचलित अनेक कुरीतियों व बुराइयों का उद्घाटन भी जहाँ-तहाँ होता चलता है। गांव का डेरा कबीरपंथियों का डेरा है, जो कबीर के विचारों का प्रतिरूप होना चाहिए लेकिन ये डेरे संपत्ति के खेल और महंतों की विकृतियों की पूर्ति का माध्यम बन जाते हैं। पहले डेरे का महंत सेवादास अबोध बालिका लछमी को डेरे पर पढ़ाने लिखाने व पालने पोसने लाया था, लेकिन उसकी किशोरावस्था आते ही उसकी दैहिक शोषण करने लगता है। सेवादास का चेला रामदास भी कम नहीं। यहाँ तक बसुमतिया मठ के महंत से लछमी को लेकर सेवादास के लड़ाई-झगड़े और मुकद्दमेबाजी तक होती है और विडंबना यह कि कानून भी लछमी को सेवादास के हवाले कर देता है।

डेरे के भीतर की गंदगी और भी अधिक उभर कर सामने आती है, महंत सेवादास के मरने के बाद। तब इस मठ की गद्दी के लिए संघर्ष होता है। रामदास पन्द्रह साल पहले खंजड़ी बजाने के कारण भैंस चराने से छूट कर डेरे में आ गया था और अब वह डेरे की नौ सौ बीघे की छोटी ज़मींदारी का मालिक हो जाएगा। महंती सिर्फ धार्मिक काम नहीं है, इसलिए नौ सौ बीघे की काश्तकारी पर मठ के आचरण गुरु ने जिस लरसिंहदास को खबर देने भेजा है, वही महंती का दावेदार हो जाता है। न सिर्फ महंती का दावेदार, वह लछमी पर भी लाख टपकाने लगता है और लछमी से 'बिलस साधु' की पदवी पाता है।

लरसिंहदास महंती हासिल करने के लिए जो तिकडमें करता है, उन्हें देखकर तो किसी भी भक्त को इन मठों व मठाधीशों से घृणा हो जाए। शायद इसी उद्देश्य से रेणु ने इन मठों के भीतर की दुनिया का 'मैला आंचल' में पर्दाफाश किया है।

लरसिंहदास को तो कालीचरण मार कर भगा देता है लेकिन रामदास भी कम नहीं है। लछमी पर उसकी भी कुदृष्टि ही है, सिर्फ इतना फर्क है कि वह उससे डरता है, अंततः वह नई दासिन रखने भी मांग कर देता है हालांकि गद्दी मिलते समय हर महंत से इकरारनामा लिखवाया जाता है।

"हमेशा 'लंगोटबंद' रहेंगे। मादक द्रव्य का सेवन नहीं करेंगे। दासी रखेलिन नहीं रखेंगे।" इत्यादि लेकिन मठों के महंतों की स्थिति भारतीय राजनीतिक पार्टियों के नेताओं के बायदों व घोषणाओं जैसी ही है। इनसे सत्ता पाने के लिए कुछ भी कहलवा लो, लिखवा लो, लेकिन एक बार सत्ता हाथ में आई नहीं कि वास्तविक चरित्र उघड़ना शुरू हो गया। समाज के राजनेता जितने भ्रष्ट हैं, उतने ही भ्रष्ट समाज के धार्मिक नेता भी हैं, रेणु ने 'मैला आंचल' में इस तथ्य को कुशलतापूर्वक उद्घाटित किया है।

डॉ. प्रशांत कुमार समाज के प्रति अति संवेदनशील है, जो विदेश जाना न चाहकर मेरीगंज जैसे पिछड़े गांव में काला-आज़ार संबंधी रिसर्च करना चाहता है। लेकिन डॉक्टरी पेशे से जुड़े लोगों में प्रचलित सामाजिक मूल्यों के अनुसार 'यह भावुकता का दौरा' है। गांव में यदि एक ओर शिक्षा सुविधाएं न होने के कारण मानसिक पिछड़ापन व्याप्त है तो दूसरी ओर चिकित्सा सुविधाओं का अभाव है। मिथिला की सुंदर लड़की निर्मला जिसकी आंखें इसलिए अंधी हो जाती हैं क्योंकि आंखें आने पर उसे सामान्य आंख की दवाई भी नहीं मिलती।

दूसरी ओर मानसिक पिछड़ेपन और अंधःविश्वास के कारण गणेश की नानी और पारवती की मां, जो डॉ. को बुढ़ापे में भी सुंदर प्रतीत होती है, को गांववासी डाइन बना देते हैं, क्योंकि चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में उसके पति, देवर-देवरानी, बेटा-बेटी सबकी मृत्यु हो जाती है और इन सबकी मृत्यु के लिए उसे जिम्मेदार ठहराया जाता है। क्योंकि वह डाइन है, इसलिए 'तीन कुलों को खा गई।' डॉ. इस स्नेहिल महिला को मौसी बनाता है और उसके नाती गणेश को बचाता है।

बिहार के ग्रामीण समाज में भी गांधी और जवाहरलाल नेहरू का राष्ट्रीय नेताओं के रूप में सम्मान है और भगतसिंह का क्रांतिकारी के रूप में, लेकिन बिहार के अपने नेताओं के रूप में राजेन्द्र प्रसाद और जयप्रकाश नारायण गांव वासियों के जनमानस में बसे हैं, जिसकी झलक होली के गीतों में भी मिलती है।

भगत सिंह की प्रतिष्ठा जनमानस में मस्ताने की है, जिसने 'फटाक से बम फोड़ दिया था'। वह भारत का वीर लड़ाका भी था लेकिन वह सब कुछ होने पर भी यह सवाल जरूर उठता है 'भगत सिंह कौन जात था?' (पृष्ठ 161) राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्रवाद, समाजवादी आंदोलन और क्रांतिकारी विचारधारा भी बिहार के जनमानस से जाति की भावना नहीं निकाल पाई। लेखक को भी कभी-कभी लगता है कि जाति की भावना बिहार से जा ही नहीं सकती। अपने ही चरित्र प्रशांत कुमार संबंधी भी उनकी शंका है कि यदि उसे अपनी जाति पता होती, तब शायद वह इतना जाति भेद विरोधी न होता। यहाँ वास्तव में रेणु अपनी मानसिक कमजोरी का प्रदर्शन कर रहे हैं। जाति भावना कितनी भी बहुमूल्य क्यों न हो, सामाजिक परिवर्तन उसे अवश्य हिला सकता है और सच्ची मानवीय समानता स्थापित कर उसे जड़ से उखाड़ा जा सकता है।

उपन्यास का दूसरा खंड 1948 की आज़ादी की सूचना व जश्नों से शुरू होता है, लेकिन सुराज के साथ हिंदू मुसलमानों में कटने-बंटने की भी चर्चा है। बालदेव जैसे राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने भी कितना राजनीतिक पिछड़ापन है, इसकी सूचना भी 'कॉमरेड' की उनकी व्याख्या से पता चलता है, जब वह 'टीक मोंछ काटकर, मुर्गी का अण्डा खिलाकर कॉमरेड बनाने' की बात कहते हैं। आज़ादी के साथ ही देश में फैले सांप्रदायिक दंगों की चर्चा भी उपन्यास में है। 'दिल्ली, कलकत्ता, नखलौ, पटना सब जगह हिंदू मुसलमान में लड़ाई हो रही है।' (पृष्ठ 186)

बिहार में जाति विभाजन व संघर्ष तो पहले ही था, अब सांप्रदायिक भेदभाव व दंगे भी पहुंच गए। हालांकि लेखक ने सांप्रदायिकता या सांप्रदायिक दंगों पर बहुत विस्तार से चर्चा नहीं की है।

क्या देश की आज़ादी के बाद कुछ सामाजिक परिवर्तन होता है? कुछ अच्छाई की दिशा में तो यह परिवर्तन नहीं ही होता। डॉ. प्रशांत कुमार को 'कम्युनिस्ट' समर्थक मानकर गिरफ्तार कर लिया जाता है। गणेश की नानी की हत्या हीरू कर देता है। बालदेव और लछमी मठ से अलग होकर रहने लगते हैं। कमली गर्भवती हो जाती है। 30 जनवरी 1948 को महात्मा गांधी की हत्या हो जाती है। बावनदास को स्वाधीनता के बाद के कांग्रेस शासन ने विचलित कर दिया है। सीमा पर कांग्रेसी लोग ही काला-बाज़ारी का धंधा कर रहे हैं। महात्मा गांधी की हत्या के बाद उसे लगता है कि अब उसे ही देश के लिए बलिदान देना है, तो वह कलीमुद्दीपुर की ओर चल पड़ता है, जहाँ नदी के एक ओर हिंदुस्तान और दूसरी ओर पाकिस्तान है। यहीं सीमा पर कटहा थाना कांग्रेस का सेक्रेटरी दुलार चंद कापरा सीमा पर काला बाज़ारी व चोर बाज़ारी का धंधा करता है, स्मगलिंग करता है। यहीं पर बावनदास, जो महात्मा गांधी के प्रिय थे, कापरा के आदेश पर जीवित ही कुचल दिए जाते हैं, क्योंकि वह उनकी स्मगलिंग के रास्ते में रोड़ा बनकर आया था, उसकी लाश की भी दोनों देश दुर्गति करते हैं। बावनदास की खबर की झोली तीन महीने बाद अप्रैल में चेथरिया पीर बन कर लटक जाती है। आज़ादी के बाद स्वतंत्रता

सेनानियों का यह हथ्र होता है। इसे प्रकट कर रेणु ने आज़ादी के बाद बनने वाले समाज व राजव्यवस्था का स्पष्ट संकेत कर दिया है।

उपन्यास यदि यहीं पर समाप्त हो जाता तो इसमें यह अंत बहुत सशक्त होता, लेकिन रेणु उसके आगे कुछ आदर्शवाद में भटक गए। प्रशांत की रिहाई और कमली व अपने बच्चे से उसका मिलन तो यथार्थ कहा जा सकता है, लेकिन तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद द्वारा संथाल टोली व किसानों के पांच बीसी दर से ज़मीने लौटाना थोड़ा आदर्शवादी है, वैसे ही डाक्टर का कुछ कुछ गांधीवादी मानवतावादी बनना भी आदर्शवादी प्रतीत होता है। कुल मिलाकर 'मैला आंचल' में चित्रित राजनीतिक व सामाजिक संदर्भ काफी वस्तुगत व यथार्थवादी ढंग से अंकित हुए हैं और 1946-48 के बीच के भारतीय समाज के संक्रमणकाल का यह उपन्यास एक सृजनात्मक दस्तावेज बन गया है।

9.4 सारांश

इस इकाई का आपने ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। मैला आंचल में अभिव्यक्त राजनीतिक और सामाजिक संदर्भों को विस्तार से जान लिया है। अब इस सारांश रूप में समझ लीजिए नीतियों को 'मैला आंचल' उपन्यास में फणीश्वरनाथ रेणु ने 1946-48 के काल के भारतीय समाज को, राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक घटनाक्रम को, उसके राजनीतिक रूपांतरण को, उसकी सामाजिक परिघटनाओं को अत्यंत सूक्ष्मता से अंकित किया है।

राजनीतिक संदर्भों में रेणु ने 1946 में उपनिवेशवादी शासन की छत्रछाया में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के कार्यकलापों और 1948 में अंग्रेजों के चले जाने के बाद उसी शासन को बिना किसी परिवर्तन के चलाए जाने को बड़ी गहराई से चित्रित किया है। भारतीय राजनीति के सभी पहलू कांग्रेसी आंदोलन, समाजवादी आंदोलन, क्रांतिकारी आंदोलन, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की हिंदू राज्य की पताका लहराने की कोशिश देश का विभाजन, सांप्रदायिक दंगों आदि तो उपन्यास में चित्रित हुए ही हैं, शासन व्यवस्था के औपनिवेशिक स्वरूप को भी लेखक ने उद्घाटित किया है, जो स्वतंत्रता पूर्व व स्वातंत्र्योत्तर काल में बिना किसी परिवर्तन के चलता रहता है। शोषक वर्गों व शोषित वर्गों दोनों की ही स्थिति स्वतंत्रता से पहले व बाद एक ही तरह की बनी रहती है। भारतीय समाज के इस कटु राजनीतिक यथार्थ को रेणु ने 'मैला आंचल' में ईमानदारी से अंकित कर दिया है।

उसी प्रकार बिहार के सुदूर ग्रामीण क्षेत्र के, विशेषतः मिथिला अंचल के सामाजिक मानचित्र को भी रेणु ने 'मैला आंचल' में पूरी विविधता से उकेरा है। गांव का जाति-विभाजन, शिक्षा-चिकित्सा सुविधाओं का अभाव, मानसिक पिछड़ापन, गांव में मनाए जाते पर्व-त्यौहार लोकगीत-संगीत, स्त्री-पुरुष संबंध, सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को रेणु ने बड़ी सजीवता से उपन्यास में अंकित किया है। गांव के जीवन में बालदेव, बावनदास, कालीचरण और डॉक्टर प्रशांत कुमार की मौजूदगी व प्रयत्नों से होने वाले सामाजिक परिवर्तनों का अंकन भी रेणु ने इस परिवर्तन के अंतर्विरोधों के साथ किया है। बिहार के मिथिला अंचल के राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन का एक प्रामाणिक रूप जानने समझने के लिए 'मैला आंचल' एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कृति का दर्जा रखती है।